आपके लिये उसे बिलप्राय ही कहना चाहिये। हे जीवितेश्वर! अधिक और क्या कहूं, यदि मेरे जीवनसे प्रयोजन हो, तो मेरा वह मनोरथ पूरण करिये; नहीं तो मैं जीवन गत होऊंगी। राजा प्राणापेक्षा प्रियतमा उस कलावतीकी बात सुन उनकी ओर अपनी हितकर बात कहने लगे। राजाने कहा, अहो भाविनि प्रिये! इस जगत्में तुम्हारे अदेय कुछ भी नहीं है; तुमने कला और शील-गुणसे मेरा जीवन पर्य्यन्त खरीद लिया है। अहो कलावती! कहनेमें विलम्ब न करो, यह सम्पन्न हुआ है; ऐसा ही समझो। तुम जैसी पति-व्रताओंके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है। अहो प्रिये कलावती! किसके निकट और क्या प्रार्थना करना होगी, प्रार्थयिता ही कौन हैं? तुम्हारा या मेरा आचरण औरोंकी तरह नहीं है। हे भाविनि! देश, धनराशि, दुर्ग, बन जो कुछ है, वह सब तुम्हारा ही है, मेरा नहीं, मैं नाम-मात्रका अधीश्वर हूं। हे जीवितेश्वरि! तुम्हें छोड़ और सबके ऊपर मेरा वही प्रभुत्व है। मैं तुम्हारे कहनेसे राज्यको विषवत् त्याग कर सकता हूं। राजा माल्यकेतुकी बात सुनकर कलावतीने गम्भीरभावसे कहा, हे नाथ पहले विधाताने नाना प्रकारकी प्रजा सृजनकर उनके कल्याणके निमित्त धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष, चार पुरुषार्थ सृजन किये। पुरु-षार्थहीन होनेसे जन्म पानीके बुलबुलेकी तरह विफल होता है, इसलिये इसलोक और परलोकके सुखके लिये अन्ततः एक साधन करना उचित है। पुराणज्ञ पण्डितोंने जो कहा है, वह बात मर्थ्यार्थ दिखाई देती है, कि जहां दम्पतियुगलमें परस्पर सद्भाव रहता, वहां त्रिवर्गकी वृद्धि होती है। आपके भवनमें मेरी जैसी शत दासी विद्यमान हैं सही, किन्तु मेरे प्रति ही आपका अत्यन्त प्रेम दिखाई देता है। आपकी दासी होना ही सौभाग्यकी बात है, अङ्क-शायिनी होनेकी, तो बात ही नहीं है। उसपर पुत्रलाभ और स्वाधीनपति; सुतरां कौन रमणी मेरे समान सौभाग्यशालिनी है? बुद्धिमान् पुरुष इष्टापूर्त्त कर्म्मके लिये अर्थ, तपश्चरणके लिये निर्व्विघ्न आयु और अपत्यलोभके लिये दारपरिग्रह करते हैं। हे प्रिय! विश्वेश्वरकी अनुग्रहसे आपको यह सब वर्त्तमान हैं। हे नाथ! यदि मेरा अभिलाष एकान्त पूरणीय समझें, तो कहती हूं, सुनिये,—अवि-लम्ब मुझे काशीधाममें भेजिये, मेरा प्राण पहले ही वहां जा चुका है—इस जगह केवल शरीरमात्र है। माल्यकेतु कला-वतीकी स्पष्ट बात सुन क्षणकाल मन ही मन विचारकर बोले,—प्रिये कलावती! यदि तुम्हारा एकान्त ही मन्तव्य हुआ है, तो तुम्हारे विहीन यह चञ्चल राज्यलक्ष्मीका

मुझे प्रयोजन ही क्या है? यह सप्ताङ्ग राज्य राज्यपदवाच्य नहीं है, प्रियतमा ही राजलक्ष्मी है; अतएव तुम्हारे बिना मुझे यह तृणवत् तुच्छ है। प्रिये! मैं निष्कण्टक राज्य करता हूं, निरन्तर विविध भोगसे मेरी सब भोगेन्द्रिय सफल हुई हैं, सन्तोष चरितार्थ हुआ है और पुत्र उत्पन्न हुआ है; मुझे इस जगत्से और काम ही क्या है? अवश्य ही हम दोनो वाराणसी चलेंगे। इस तरह माल्यकेतुने प्रियतमाको आश्वास्तकर कृतसङ्कल्प हो दैवज्ञगणको बुला शुभदिन दिखाया। फिर अमात्यादिसे विदा ले, राजका भार पुत्रके हाथमें दे उनसे कुछ अर्थ और रत्नादि लेकर काशीकी ओर यात्रा की। राजा माल्यकेतुने विश्वेश्वरनगरीके दर्शनसे अपनेको कृतार्थ समझा। रानी कलावती भी पूर्व्वजन्मसंस्कारवश निकटस्थग्रामीय व्यक्तिकी तरह नगरीके पथ समुदायसे अवगत हुईं। वहां वह दोनो मणिकर्णिका स्नान, प्रचुर अर्थदान विविध रत्नसमूहसे विश्वनाथको पूजा और रत्न, गज, अश्व, धेनु, विचित्र दुकूल, विविध पूजाका उपकरण, स्वर्णरौप्यमय कलस, दीप, दर्पण, चामर, ध्वजदण्ड, पताका और विचित्र चन्द्रातप दानकर प्रदक्षिणाके बाद मुक्तिमण्डपमें गये। वहां धर्म्मकथा सुन धन वितरणकर सायंकालीन महापूजाके समाप्त होनेपर नृत्यगीतवाद्यादि महोत्सवमें रात्रिजागरणकर प्रातःकाल उठ शौचादि क्रिया समाधाकर रानी कलावतीकी नर्द्दिष्ट पथसे, राजा ज्ञानवापीमें गये। नृपतिने कलावतीके साथ प्रफुल्लचित्तसे स्नानकर पितृतर्पण और पिण्डदानके बाद सत्पात्रको रौप्यसुवर्णादि वितरणपूर्व्वक दीन, अन्ध, कृपण और अनाथोंको भोजन करा पारण किया, कलावतीने ज्ञानवापीकी सोपानराजि रत्नसे बंधा दिया। वह कभी एकान्तरोवास, कभी तीन दिन, छः दिन, सप्ताह, पक्ष और एक मासतक उपवास प्रभृति कृच्छ्र चान्द्रायणादि व्रतानुष्ठानकर पतिशुश्रुषामें जीवनका अवशिष्ट भाग क्षणकालकी तरह यापन करने लगीं; एक दिन वह दोनो ज्ञानवापीमें स्नानकर उपविष्ट हुए, ऐसे ही समय एक जटाजूटधारीने आकर उन्हें विभूति प्रदानकर प्रसन्नमुखसे आशीर्व्वाद दे कहा, तुमलोग उठो, भूषित हो, तुम लोगोंको क्षणकालमें तारकोदय (मुक्ति) लाभ होगा। यह बात जैसे ही उन्होंने उन लोगोंसे कही, उसी समय लोगोंके सामने किङ्किणिनिनादितकर विमान उपस्थित हुआ। भगवान् चन्द्रमौलिने उस विमानसे उतर उनके कर्णमूलमें स्वयं किसी मन्त्रसे उपदेश दिया। तत्क्षणात् अनाख्येय एक परम ज्योतिः आविर्भूत हुई। भगवान्ने भी आकाशपथ उद्दोपितकर अपने स्थानको प्रस्थान किया। स्कन्दने कहा,—हे मुने! तबसे इस जगत्में ज्ञान-

वापी प्रत्यक्ष ज्ञान दान करती है। इसलिये सब तीर्थों से श्रेष्ठ हुई। यह ज्ञानवापी सर्व्वज्ञानमयी सर्व्वलिङ्गमयी और साक्षात् शिवमूर्त्ति है। सद्यः शुद्धिकर अनेक तीर्थ इस पृथिवीमें हैं, किन्तु वह इसकी सोलह कलाकी एक कलाके बराबर भी नहीं हैं। जो मनुष्य ज्ञानवापीकी उत्पत्तिकथा अवहित मनसे सुनेंगे, उनका मृत्यु कालमें भी ज्ञानभ्रंश नहीं होगा। महादेव और गौरीका प्रीतिवर्द्धक, पवित्र, रमणीय महापापनाशक इस ज्ञानवापीका महत् उपाख्यान श्रद्धापूर्व्वक पठन, पाठन या श्रवण करनेसे मनुष्य शिवलोकमें जाते हैं।

चतुस्त्रिंश अध्याय समाप्त ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंश अध्याय।

सदाचार।

अगस्त्यने कहा, महाक्षेत्र अविमुक्तक्षेत्र परमनिर्व्वाणकारक, क्षेत्रसमूहमें परमक्षेत्र और मङ्गलराशिका भी मङ्गलस्वरूप है। सब श्मशानोंमें अविमुक्तक्षेत्र ही परम महत् श्मशान है; सब ऊषरक्षेत्रोंमें परम-ऊषर है। हे मयूरवाहन! अविमुक्तक्षेत्र, धर्म्माभिलाषि बुद्धिसम्पन्न व्यक्तियोंमें परमधर्म्मराशिसम्पादक और अर्थप्रार्थियोंका परमार्थप्रकाशक है। यह कामियोंको कामसम्पादक और मुमुक्षु व्यक्तियोंका मुक्तिप्रद है। आपकी बातोंमें जहां तहां सुना है, कि 'काशीमें परम मुक्ति है।' हे गौरीहृदयानन्दकर कार्त्तिकेय! अविमुक्तक्षेत्रकी एकदेशवर्त्तिनी ज्ञानवापीकी परम कथा सुन मैंने स्थिर किया है, कि काशीमें अणुप्रमाण भूमि भी सिद्धिमुक्ति-प्रदायिनी और महीयसी है; काशीमें व्यर्थभूभाग कहीं नहीं है। इस अखिल महीतलमें, कहां तीर्थ नहीं हैं? परन्तु वह समस्त काशीके धूलिकण तुल्य भी नहीं हैं। सागरकी आनन्दविधायिनी नदी कहां नहीं हैं? किन्तु उनमेंसे गङ्गाके समान कोई हो सकती हैं? हे षड़ानन! भूतलमें कहां नहीं मुक्तिक्षेत्र हैं; किन्तु वह सब अविमुक्तक्षेत्रके कोटिभागके एकभाग समान भी नहीं हैं। जहां गङ्गा, विश्वेश्वर, और काशी, यह तीन मूर्त्ति जाग्रत हैं, वहां मुक्ति-लक्ष्मी प्राप्त होंगी, इसमें आश्चर्य ही क्या है? हे स्कन्द! मानव—विशेषतः कलियुगके, नितान्त चञ्चलेन्द्रिय मनुष्य इस मूर्त्तित्रयको किस तरह नियत प्राप्त हो सकते हैं; कलियुगमें वैसी तपस्या कहां है? वैसा योगानुष्ठान कहां है? वैसा व्रत अथवा दान हो कहां है? तब कलियुगमें मोक्ष कैसे मिलेगा? हे षड़ानन! बिना तपस्या, बिना योग, बिना व्रत और बिना दानके काशीमें मुक्ति होती है, यह आपने कहा। हे स्कन्द! कैसे कैसे आचार करनेसे काशी प्राप्ति होती है, सो कहिये। मैं विवेचना करता हूं,

सदाचार व्यतीत, मनोरथसिद्धि नहीं होती। आचार परमधर्म्म, आचार परम तपस्या. आचारसे आयुर्वृद्धि होती है, आचारसे पापक्षय होता है। अतएव हे षड़ानन! पहले आचार प्रसङ्ग ही कहिये, देवादिदेवने आपसे जो कहा है, उसीके अनुसार कहिये। स्कन्दने कहा, हे मित्रावरुणनन्दन! जिस नित्य आचरणसे सर्व्वाभीष्ट प्राप्त होता है, सज्जनगणका हितकारी वह सदाचार मैं कहता हूं। स्थावर कृमि, जलचर, जीव, पक्षी, पशु और मनुष्य—यह यथाक्रमसे (पहले पहलेकी अपेक्षा उत्तरोत्तर अधिक) धार्म्मिक हैं। देवगण, उनकी अपेक्षा भी धार्म्मिक हैं। प्रथमकथित स्थावरकी अपेक्षा द्वितीयकथित कृमि क्रमसे सहस्रांशके एकांश हैं, इसी तरह क्रमसे पहलेकी अपेक्षा उत्तरकथित जीव सहस्रांशके एकांश हैं, तथापि सभी महाभाग हैं;—अपेक्षाकृत अल्प होनेपर भी सबका श्रेणीविभाग सुविस्तृत है;—मुक्ति पर्य्यन्त तुल्यरूपमें सबका आश्रय संसार है। हे मुने! स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज और जरायुज इन चतुर्व्विध प्राणियोंमें चेष्टासम्पन्न प्राणिगण ही अति उत्तम हैं, उनकी अपेक्षा ज्ञानपूर्व्वक चेष्टाशाली जीव श्रेष्ठ हैं। उन जीवोंमें मनुष्य प्रधान हैं और मनुष्यसे ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। ब्राह्मणोंमें विद्वद्गण प्रधान और विद्वद्गणमें, शास्त्रोपदिष्ट व्यापारमें कृतनिश्चय व्यक्तिगण प्रधान हैं। कृतनिश्चय व्यक्तिकी अपेक्षा अनुष्ठाता ही श्रेष्ठ हैं। कर्म्मानुष्ठातृगणकी अपेक्षा ब्रह्मतत्पर व्यक्तिगण प्रधान हैं। हे कुम्भयोने! त्रिलोकमें उनके अर्च्चनीय और कोई नहीं है। तपोविद्याविशेषमें वही परस्परके पूजक हैं। इसीलिये ब्रह्माने ब्राह्मणकी सृष्टि की और इसीसे जगत्को सब वस्तुओंके पाने योग्य ब्राह्मण हैं; और कोई नहीं। किन्तु सदाचार ब्राह्मण ही सर्व्वाधिकारी हैं, आचारच्युत व्यक्ति नहीं। अतएव ब्राह्मण सतत आचरणसम्पन्न होंगे। हे मुने! रागद्वेषरहित ही ज्ञानी विद्वान् विप्रके, धर्म्ममूल सदाचारका अनुष्ठान करते हैं। सुलक्षणविवर्ज्जित मनुष्य भी असूया परित्यागकर श्रद्धापूर्व्वक आचारपरायण होनेपर शतवर्ष जीवन लाभ करते हैं। मनुष्य आलस्यवर्ज्जित हो अपने अपने कर्म्मसे धर्म्ममूल श्रुतिस्मृति कथित सदाचार सेवन करेंगे। दुराचार पुरुष निन्दनीय, सदाव्याधिग्रस्त, अल्पायु और दुःखभागी होते हैं। पराधीन कर्म्म परित्याज्य, सदा आत्मवश कर्म्म ही करेंगे। क्योंकि पराधीनता ही दुःखमूल और स्वाधीनता ही सुखहेतु है। शास्त्रमें जिस स्थलमें दो विरुद्ध कर्म्म कर्त्तव्य कहे गये हैं, वहां जो काम करनेसे अन्तात्मा प्रसन्न हों, वही कर्त्तव्य है, इसके सिवा और काम कर्त्तव्य नहीं है। पहले कहा

गया है, कि यम नियम ही धर्म्मका सर्व्वस्व है, अतएव धर्म्माभिलाषीको यमनियमानुष्ठान ही कर्त्तव्य है। सत्य, क्षमा, सारल्य, ध्यान, अनृशंसता, अहिंसा, वाह्येन्द्रियसंयम, प्रसन्नता, मधुरता और कोमलता यह दशविध यम हैं। शौच, स्नान, तपस्या, दान, मौन, याग, अध्ययन, व्रत, उपवास और इन्द्रियसंयम, यह दशविध नियम हैं। काम, क्रोध, मद, मोह, मात्सर्य्य और लोभ, इन छः रिपुओंका विजयी सर्व्वत्र विजयी होता है। परपीड़नपराङ्मुख हो वल्मीकस्तूपकी तरह धर्म्मसञ्चय कर्त्तव्य है। धर्म्म ही परलोकका सहाय है। पिता, माता, पुत्र, भ्राता, पत्नी, बन्धु, लोकजन, हस्ती, अश्वादि उपकरण, परलोकके सहाय नहीं हैं; परलोकका धर्म्म ही सहाय है। प्राणी अकेले जन्म लेते और अकेले ही मरते हैं, अकेले ही पापपुण्य भोगते हैं पञ्चत्वप्राप्त देहको काष्ठलोष्ट्रादिकी तरह भूतलमें परित्यागकर बन्धुगण लौट जाते हैं, धर्म्म ही केवल उस गमनपरायण प्राणीका अनुगमन करता है। अतएव कृती व्यक्ति, परलोकसहाय धर्म्मका सञ्चय करेंगे। धर्म्मके सहाय पानेसे, दुस्तर तमः दूर हो सकता है। सुधी व्यक्ति, अधम व्यक्तियोंको परित्यागकर उत्तम उत्तम व्यक्तियोंसे सम्बन्ध करेंगे और इस तरह वंशका उत्तमत्व साधन करेंगे? उत्तमोत्तम सम्बन्धकर और अधमाधम व्यक्तियोंका सम्बन्ध वर्ज्जनकर ब्राह्मण श्रेष्ठत्व प्राप्त करेंगे, इसके वैपरीत्याचारणसे शूद्रत्वको लाभ होते हैं। अध्ययनहीन, सदाचारत्यागी, अलस और अभक्ष्यभोजी ब्राह्मणको मृत्यु, अपने वश करती है॥ इन सब कारणोंसे ब्राह्मण यत्नसहित सदा सदाचार करेंगे। तीर्थगण भी सदाचारपरायण व्यक्तिगणके समागमका अभिलाष रखते हैं। रजनीका शेष यामार्द्ध (चारदण्ड) ब्राह्म समय है। प्राज्ञ व्यक्ति सदा उस ब्राह्ममुहूर्त्तमें उठ अपनी हितचिन्ता करेंगे। निद्रा परित्यागकर पहले ही गणेशका स्मरण, फिर अम्बिकासहित महादेवका स्मरण, फिर क्रमसे लक्ष्मीसहित नारायण और ब्रह्माणीसहित ब्रह्माका स्मरण कर्त्तव्य है। फिर इन्द्रादि देवता, वशिष्ठादि मुनि, गङ्गा प्रभृति नदी, श्रीपर्व्वत प्रभृति पर्व्वत, क्षीरोदादि समुद्र, मानसादि सरोवर नन्दनादि वन, कामधेनु प्रभृति धेनु, कल्पद्रुम प्रभृति वृक्ष, सुवर्ण प्रभृति धातु, उर्व्वशीप्रमुख दिव्य रमणी, गरुड़ादि पक्षी, अनन्तादि नाग, ऐरावत प्रमुख हस्ती, उच्चैःश्रवा प्रभृति अश्व, कौस्तुभादि मङ्गलकर मणि, अरुन्धतीप्रमुख पतिव्रता रमणी, नैमिषादि अरण्य और काशीपुरी प्रभृति पुरीका स्मरण करेंगे। फिर विश्वेश्वर प्रमुख लिङ्ग। ऋक् प्रभृति वेदचतुष्टय, गायत्री प्रभृति मन्त्र, सनकादि योगीगण, प्रणवादि महाबीज, नारद प्रभृति वैष्णव,

।ण प्रभृति शिवभक्तगण, प्रह्लाद प्रभृति दृढ़व्रत भक्तगण, दधीचि प्रभृति वदान्य मुनिगण और हरिश्चन्द्र प्रमुख भूपतिसमूहका स्मरणपूर्व्वक सर्व्वतीर्थोत्तमोत्तम जननीके चरणयुगलका ध्यानकर प्रसन्नचित्तसे पिता और गुरुजनकी मन ही मन चिन्ता करेंगे। फिर मलत्याग करनेके लिये गांवसे शत धनु दूर और नगरसे उससे भी चारगुण दूर नैऋतदिक्को गमन करेंगे। वहां तृण द्वारा भूमि अच्छादन और वस्त्र द्वारा मस्तक आवृतकर, दक्षिण कानमें यज्ञोपवीत स्थापन और मौनावलम्बनकर दिनमें उत्तर-मुख और रातमें दक्षिणमुख हो, मलमूत्र त्याग करेंगे। दण्डायमान हो मलमूत्र त्यागना कर्त्तव्य नहीं। विप्र, गो, अग्नि और अनिलके अभिमुखीन हो और जलमें, फालकृष्ट भूमिमें रथ्या में और सेव्य-भूमिमें मलमूत्र त्याग न करेंगे, उस समय किसी तरफ न देखें ज्योतिश्चक्र और नि-र्म्मल गगन भी न देखें। फिर बांयें हाथसे शिश्न धारणकर वहांसे सावधान हो उठेंगे। मूषिक (चूहे) और नकु-लकी (न्योलेकी) उखाड़ी हुई मट्टी और शौचोच्छिष्ट मट्टीके सिवा कीट और कर्कट रहित मिट्टी लेकर मृत्तिका लिङ्गमें एक बार, पायुमें पांच बार, बायें हाथमें दस बार, दोनो हाथमें सात बार, दोनो पैरमें एक एक बार और फिर दोनो हाथोंमें तीन बार लेपनकर, जलमें प्रक्षालित करेंगे। जो गन्ही मलगन्ध और मृत्तिका लेपक्षय नहीं होते, वह इस तरह शौच-क्रिया करेंगे। ब्रह्मचारि प्रभृति तीन आश्रमी यथाक्रमसे इसकी अपेक्षा दो दो गुण अधिक शौच करेंगे अर्थात् ब्रह्मचारी गृहीसे द्विगुण; वाणप्रस्थाश्रमी, ब्रह्म-चारीसे द्विगुण और संन्यासी वाणप्रस्था-श्रमीसे द्विगुण करेंगे। दिनके लिये इस तरह शौच निर्द्दिष्ट है। रातमें इसका आधा करेंगे, पीड़ितावस्थामें आधा करेंगे, चौरभयादिभीषण पथमें उससे भी आधा शौच विहित है। पुरुषविहित शौचक्रियासे स्त्रियोंको अर्धक शौच विहित है। सुस्थ अवस्थामें इसे न्यून न करेंगे। भावदुष्ट व्यक्ति, निखिल नदीजल, मृत्तिका-राशि और गोमयसमूह द्वारा आपाद मस्तक शौच करनेपर भी शुद्ध नहीं हो सकते। शौचक्रियामें सरस आमलकी फल परिमाण मृत्तिका ग्रहण करना चाहिये। यावतीय आहुतिका और चान्द्रायणव्रतमें ग्रासका परिमाण भी यही है। फिर तुष, अङ्गार, अस्थि और भस्मवर्ज्जित शुद्ध भूमिभागमें, पूर्व्वमुख अथवा उत्तरमुख हो उत्तमरूपसे उपवेशन कर ब्राह्मण, ब्राह्म-तीर्थद्वारा अमुष्ण, अफेन हृदय पर्य्यन्त गामी, दृष्टिपूत जल द्वारा लराशून्य हो आचमन करेंगे। क्षत्रियगण कण्ठगामी और वैश्यगण तालुगामी जल द्वारा आचमन-कर शुद्ध होते हैं। स्त्री, शूद्र मुखसे जल-

स्पर्श करके ही शुद्धि पाते हैं। मस्तक या कण्ठ आवृतकर जलमें शुष्क वस्त्र पहन या मुक्तशिख हो अथवा पादप्रक्षालन न करके जो व्यक्ति आचमन करते हैं, उन्हें शुद्धि नहीं मिलती। तीनबार जलपानकर वक्ष्यमान प्रकारसे इन्द्रियछिद्र विशोधित करेंगी। दक्षिण हाथके अङ्गुष्ठमूल द्वारा दो बार ओष्ठाधर स्पर्श करेंगी; फिर तर्ज्जनी, मध्यमा और अनामिका, इन तीन उंगली द्वारा फिर मुखस्पर्श करेंगी। तर्ज्जनी और अङ्गुष्ठके अग्रभाग द्वारा दोनो नासिका रन्ध्र स्पर्श करेंगी। फिर अङ्गुष्ठ और अनामिका, अग्रभाग द्वारा दोनो आंख और कानको स्पर्श करेंगी। फिर कनिष्ठा और अङ्गुष्ट द्वारा नाभि रन्ध्र स्पर्श करेंगी। फिर हस्ततल द्वारा हृदय स्पर्श करेंगी, समस्त उंगली द्वारा मस्तक स्पर्श करेंगी और फिर उंगलियोंके अग्रभाग द्वारा दक्षिणस्कन्ध और वामस्कन्ध स्पर्श करेंगी। सब जगह स्पर्श करनेके समय हाथ सजल रहना चाहिये। रथोपतर्पण, स्नान, भोजन या जलपानकर और शुभकर्म्मके प्रारम्भमें एकबार आचमनकर फिर आचमन करेंगी। निद्रासे उठकर वस्त्र परिधानकर, किसी अमाङ्गलिक, वस्तुको देख और प्रमादवश अशुचि द्रव्य स्पर्शकर, दोबार आचमन करनेसे पवित्र हुआ जाता है। इसतरह आचमनके बाद मुखशोधनके लिये दन्तधावन करना चाहिये। बिना दन्तधावन किये आचमन करके भी शुद्ध नहीं हुआ जाता। प्रतिपद, अमावस्या, षष्ठी और नवमी तिथिमें या रविवारको दन्तमें दन्तधावनकाष्ठ संयोग करनेसे सप्तम पुरुषपर्य्यन्त दग्ध होते हैं। इस निषिद्ध दिन या दन्तकाष्ठके अलाभसे मुखपरिशुद्धिके लिये द्वादश गण्डूष जलसे मुंह धोना विहित है। कनिष्ठा उंगलीके अग्रभागकी तरह स्थूल, त्वक्युक्त, निर्व्रण, सरल और सार्द्ध द्वादशाङ्गुल परिमित दन्तकाष्ठ ग्रहण करेंगी। ब्राह्मणके सिवा और सब वर्ण पूर्व्वापेक्षा यथाक्रमसे एक एक उङ्गली कम परिमाण ग्रहण करेंगी। आम्र, आम्रातक आमलकी, कङ्कोल, खदिर शमी, अपामार्ग खर्ज्जूरी, बेल, श्रीपर्णी, पीलू, राजादन; नारङ्ग, कषाय, कटुवृक्ष, कण्टकवृक्ष और क्षीरवृक्षसे दन्तकाष्ठ लेंगी और काष्ठद्वारा कृति उत्तम जिह्वोल्लेखनिका निर्म्माणकर लेंगी, उससे जिह्वा शोधन करेंगी। अन्न भोजनके निमित्त निर्म्मलता लाभकर स्थिरपंक्तिसे दृढ़ हो; कारण राजा चन्द्र, वनस्पतिमें प्रतिगत हो, मेरा मुख मार्ज्जन करते हुए भाग्य द्वारा उसे विशोधित करेंगी। "हे वनस्पते! तुम हमलोगोंको आयु बल, यश, तेजः, पशु, वसु, ब्रह्मप्रज्ञा और मेधा प्रदान करो।" इस अर्थका हो मन्त्र पढ़कर जो व्यक्ति प्रत्यह दन्तधावन करते हैं, वनस्पतिस्थित सोम उनपर प्रसन्न होते हैं। सुख,

पर्य्युषित रहनेपर मनुष्य अपवित्र रहते हैं, अतएव विशुद्ध होनेके लिये प्रयत्न सहित प्रत्यह दन्तधावन करेंगे। उपवासमें भी मुखप्रक्षालन, अञ्जन, गन्ध, अलङ्कार, सद्वस्त्र, माल्य और अनुलेपनका दोष नहीं है। इसतरह दन्तधावनकर, पवित्र तीर्थमें प्रातःस्नान और प्रातःसन्ध्या करेंगे। अहोरात्र नवछिद्र द्वारा मलस्रावी मलसम्पन्न शरीर प्रातःस्नानसे शुद्ध होता है। प्रातःस्नान, मनुष्योंको उत्साह, मेधा, सौभाग्य, रूप सम्पद और मनःप्रसन्नताका हेतु है; इसलिये ही महात्मालोग प्रातःस्नानकी प्रशंसा करते हैं। मनुष्य निद्राके वशवर्त्ती हो स्वेद, लाला प्रभृति क्लेद द्वारा परिपूर्ण होते हैं; प्रातःस्नान करनेसे मन्त्र स्तोत्र और जपादिपर उसका अधिकार होता है। अरुणोदयकालमें स्नान, प्राजापत्य व्रतके समान है और इस स्नानसे महापाप विनष्ट होता है। प्रातःस्नानसे मनुष्योंका पाप, अलक्ष्मी, ग्लानि, अपवित्रता और दुःखस्वप्नदोष विनाश होता है। प्रातःस्नान तुष्टि-पुष्टिप्रद है। प्रातःस्नायी व्यक्तियोंपर दोषसमूह कभी आक्रमण करनेमें समर्थ नहीं हैं। प्रातःस्नानसे दृष्ट और अदृष्ट त्रिविध फलप्राप्ति होती है। अतएव मनुष्य अवश्य प्रातःस्नान करेंगे। हे कुशयोने! मैं प्रसङ्गक्रमसे स्नान विधि कहता हूं; कारण, पण्डितोंने कहा है, कि विधिपूर्व्वक स्नान, साधारण स्नानकी अपेक्षा शतगुण श्रेष्ठ है। विशुद्ध मृत्तिका, कुश, तिल और गोमय ग्रहणकर पवित्र स्थानमें अवस्थानकर स्नान करना होगा। पहले कुश ग्रहण और शिखा बांध जलमें "उरुंहि" इत्यादि मन्त्र उच्चारणकर जल आवर्त्तित करेंगे। फिर "ये ते शतं" इत्यादि मन्त्र द्वारा जलको आमन्त्रणकर "सुमित्रिया नः" इत्यादि मन्त्र उच्चारण करते हुए पहले जलाञ्जलि प्रदान करते हुए "दुर्म्मित्रिया" इत्यादि मन्त्र पढ़के उद्देशसे पढ़ेंगे। फिर "इदं विष्णु" इत्यादि मन्त्र उच्चारणपूर्व्वक मृत्तिका लेपन करेंगे। एकबार मृत्तिका द्वारा मस्तक क्षालितकर, दोबार मृत्तिका द्वारा नाभिका उपरिभाग, तीनबार मृत्तिका द्वारा नाभिका अधोभाग और छः बार मृत्तिका द्वारा दोनो पैर विशोधित करेंगे। फिर "आपो अस्मान" इत्यादि मन्त्र पाठपूर्व्वक प्रवाहाविमुख हो डुबकी लगावेंगे। फिर "उदिदाभ्यः शुचिः" इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुए उन्मज्जनकर "मा नस्तोक" इत्यादि मन्त्र पढ़कर, सर्व्वाङ्गमें गोमय लेपन करेंगे। फिर "इमं मे वरुण" इत्यादि, "तत्त्वायामि" इत्यादि, "त्वन्नः" इत्यादि, "सत्वन्नः" इत्यादि, "उदुत्तमम्" "धाम्नो धाम्नः" इत्यादि, "मापो मौषधीः" इत्यादि, "यदाङ्गरुन्ध्या" इत्यादि, "मुञ्चन्तु मा" इत्यादि, "अवभृथ" "अद्वैवत" (जिनके देवता जल हैं) मन्त्रस-

मूह द्वारा आत्माभिषिक्तकर ब्राह्मण, प्रणव, इसके उपरान्त महाव्याहृति, फिर गायत्री द्वारा आत्मपावन करेंगे। "आपोहिष्टा" इत्यादि मन्त्रत्रय भी आत्मविशोधक हैं, अतएव फिर उनके द्वारा अभिषिक्त करेंगे। "इदमापः" इत्यादि, "हविष्मतीः" इत्यादि, "देवीरापः" इत्यादि, "अपोदेवाः" इत्यादि, "द्रुपदादिव" इत्यादि, "शन्नोदेवी," इत्यादि, "अपोदेवी" इत्यादि, "अपां रसम्" इत्यादि और "पुनन्तु मा" इत्यादि, यह नौ पावमानीसूक्तको भी आत्मशोधक कहते हैं। इन सब मन्त्र द्वारा आत्मशोधनकर जलमें मग्न हो अघमर्षण मन्त्र जप अथवा "द्रुपादिव" मन्त्रका जप करेंगे, अथवा विधिपूर्व्वक प्राणायामका जप करेंगे, या तीन बार प्रणव जप करेंगे, विष्णु स्मरण करेंगे। इस तरह स्नानकर वस्त्र निष्पीड़नकर धौत वस्त्र या उत्तरीय परिधान करेंगे। फिर कुशग्रहण या आचमनकर प्रातःसन्ध्या करेंगे। जो द्विज, विशेषतः जो ब्राह्मण, सन्ध्याकी उपासना नहीं करते, वह जीवितावस्थामें शूद्रवत् और मरनेके बाद अवश्य ही कुक्कुर होते हैं। सन्ध्याहीन व्यक्ति सर्व्वदा अपवित्र और सब कामोंके अयोग्य रहते हैं और वह सकृत किसी क्रियाका फलभागी नहीं होता। पहले पूर्व्वमुख हो प्रणव स्मरणपूर्व्वक कुशासन बिछाकर "चतुस्त्रिंशः" इत्यादि, मन्त्र पढ़कर बद्धशिख, अनन्यचेताः अनन्यदृष्टि हो दक्षिण ओर जलधार द्वारा आत्मशम्युक्षणकर, प्राणायाम करेंगे। "आपो ज्योतिः" इत्यादि शिरोमन्त्र, सप्तव्याहृति और दश प्रणवके सहित तीनबार गायत्रीका जप करेंगे, (पूरक, कुम्भक और रेचक करेंगे) यही प्राणायाम है। ब्राह्मणके संयतचित्त या संयतेन्द्रिय हो प्राणायाम करनेपर, तत्क्षणात् अहोरात्रकृत पापसे मुक्ति होती है। जो व्यक्ति, मनःसंयमकर दश या द्वादश बार प्राणायाम करते हैं, उन्हें महत् तपस्याका फल मिलता है। एक मासतक प्रति दिन षोड़श बार प्राणायाम करनेसे भ्रुणहत्या पापसे भी मुक्ति मिलती है। जैसे अग्निके संयोगसे पार्थिवधातुका मल दग्ध होता है, उसी तरह प्राणायाम द्वारा इन्द्रियकृत दोष समूह दग्ध होता है। एक ब्राह्मणको विधिपूर्व्वक भोजन करानेसे, जो फल होता है, श्रद्धासहित दश मात्र प्राणायाम करनेसे वही फल [illegible] है। वेदादि निखिल वाक्यस्वरूप ही प्रणवमें प्रतिष्ठित हैं; अतएव वेदजपपरायण व्यक्ति सदा उस वेदादिप्रणवका अभ्यास करेंगे। जो मनुष्य सदा प्रणवाभ्यास करते हैं, सप्तव्याहृति और त्रिपदा गायत्रीसे उन्हें कभी भय नहीं रहता। हे कुम्भयोने! प्रणव परम ब्रह्म, प्राणायाम परम तपस्या और गायत्रीको अपेक्षा विशुद्धिकर मन्त्र दूसरा नहीं है। निशाकालमें कर्म्म, वाक्य और मन द्वारा

जो पाप किया जाता है, प्रातः उठकर सन्ध्या और प्राणायाम करनेसे वह पाप विनष्ट होता है। दिनमें कर्म्म, वाक्य और मनसे जो पाप किया जाता है, सायंसन्ध्यासे उपविष्ट हो प्राणायाम करनेसे वह पाप विनष्ट होता है। उठकर गायत्रीका जप करते हुए सूर्य्यदर्शन पर्य्यन्त प्रातःसन्ध्या करेंगे और उपविष्ट हो गायत्रीका जप करते हुए सम्यकरूपसे नक्षत्रदर्शन पर्य्यन्त सायंसन्ध्या करेंगी। उठकर प्रातःसन्ध्याका जप करनेसे रात्रिकृत पाप नष्ट होता और उपविष्ट हो सायंसन्ध्याका जप करनेसे दिनकृत पाप नष्ट होता है। जो प्रातःसन्ध्या और सायंसन्ध्या नहीं करते, वह शूद्रवत् हैं, द्विजगणके सब कामोंसे वहिष्कर्त्तव्य हैं। जलके समीप उपस्थित हो, नित्यकर्म्मका अनुष्ठान करेंगी और अरण्यमें जाकर समाहित-चित्तसे गायत्रीका जप करेंगी। कारण, गृहके बाहर सन्ध्योपासनासे गृहमें उपासनाकी अपेक्षा अनेक गुण हैं। जो मनुष्य जितेन्द्रिय हो मात्र गायत्रीका जप करेंगे, वह अच्छे हैं, किन्तु विवेदी होकर जो मनुष्य, सकल द्रव्य भोजन और सब वस्तुओंको बेचते हैं, वह मान्य नहीं। जिनके देवता सूर्य्य, अग्नि मुख, विश्वामित्र ऋषि, अनुष्टुप छन्दः है, वह त्रिपदा गायत्री सर्व्वापेक्षा श्रेष्ठ हैं। प्रातःकालमें "लोहितवर्णा, ब्रह्मदेवता, हंसारूढ़ा, अष्टवर्षा, रक्तमाल्यानुलेपना, ऋग्वेदस्वरूपा, अक्षमालाविभूषिता, महर्षि व्यास कर्त्तृक स्तूयमाना और अनुष्टुप् छन्दोयुक्ता" गायत्रीका ध्यान करेंगी। प्रातःकाल इस तरह गायत्रीका ध्यान करनेसे रात्रिकृत पाप नष्ट होता है। फिर "सूर्य्यश्च" इत्यादि मन्त्र द्वारा आचमन करेंगी और "आपोहिष्ठा" इत्यादि मन्त्रत्रय द्वारा मार्ज्जन करेंगी। मार्ज्जनकालमें भूमिसे, मस्तकसे, आकाशमें; आकाशसे, भूमिसे, मस्तकमें; मस्तकसे आकाशसे भूमिमें, इस तरह नौ बार जलक्षेप करेंगी। इस जगह मार्ज्जनज्ञ व्यक्तिगण, भूमि शब्दमें चरण, आकाश शब्दमें हृदय और मस्तक शब्दमें जिस अर्थका व्यवहार है, उसे निर्द्देश किया करते हैं। वारुणस्नानसे आग्नेयस्नान श्रेष्ठ, आग्नेयस्नानसे वायव्य-स्नान श्रेष्ठ, वायव्य-स्नानसे इन्द्र-स्नान श्रेष्ठ, इन्द्र-स्नानसे मन्त्र-स्नान श्रेष्ठ और मन्त्र-स्नानसे ब्राह्म-स्नान श्रेष्ठ है। ब्राह्म-स्नानसे मनुष्यका वाह्य और अन्तर शुद्ध होता है और वह देवपूजा प्रभृति सब कर्म्मके अधिकारी होते हैं। धीवर दिनरात जलमें स्नान करके भी क्या पवित्र होता है? उसी तरह भावदुष्ट व्यक्ति शत बार स्नान करनेपर भी शुद्ध नहीं होते। शुद्धान्तःकरण व्यक्तिवर्ग ही विभूतिलेपनसे पवित्र हो सकते हैं; नहीं तो भस्मधूसरित होनेपर भी राक्षसगणको कौन पवित्र कहता है? इस जगत्में निर्म्मलचित्तः व्यक्ति

ही सब तीर्थोंके स्नात सर्व्वविध अलवर्ज्जित और शतयज्ञके फलोपभोगी हैं। हे मुने! जिस तरह चित्त निर्म्मल होता है, वह सुनो। विश्वनाथ यदि प्रसन्न हों,तो चित्त निर्म्मल हो सकता है और किसी तरहसे नहीं। अतएव चित्तविशुद्धिके लिये काशीनाथके शरणापन्न होंगे। उनके आश्रयसे आन्तरिक मल सकल नियत विनष्ट होता है विश्वेश्वरकी अनुग्रहसे नष्ट-मल मानव यह देह त्यागकर मोक्षलाभ कर सकते हैं। एकमात्र सदाचार ही मनुष्यको उन विश्वेश्वरको अनुग्रहसे लाभका कारण है; अतएव मनुष्य श्रुति और स्मृतिसम्मत उक्त सदाचार समूहका अनुष्ठान करेंगे। फिर "द्रुपदादि" मन्त्रका जपकर विधिज्ञ व्यक्ति, हाथमें जल लेकर "ऋतञ्च" इत्यादि मन्त्र द्वारा अघमर्षण करेंगे। जो जलमें निमग्न खड़े हो तीन बार अघमर्षणका जप करेंगे, अश्वमेधके अन्तमें अवभृथस्नानसे जो फल मिलता है, वह व्यक्ति भी वही फल लाभ करेंगे। जो व्यक्ति जल अथवा स्थलमें अघमर्षणका जप करते हैं, सूर्य्योदय होनेपर जैसे अन्धकारराशि विलय प्राप्त होती है, उसी तरह उनके पापसमूह भी विनष्ट हो जाते हैं। "अन्तश्चरसि" इत्यादि मन्त्रको पढ़कर आचमन करनेके लिये कोई आचार्य्य उपदेश करते हैं, दूसरे शाखाभेदसे आचमनकी व्यवस्था किया करते हैं। फिर शिरोमन्त्रहीन सप्रणव महाव्याहृति उच्चारणकर गायत्री पाठकर तीन बार जलाञ्जलि प्रदान करेंगे। वह जलाञ्जलि वज्रोदक नामसे अभिहित है; सूर्य्यशत्रु मन्देह नामक राक्षसगण, वज्राहत शैलकी तरह उससे विनष्ट होते हैं। द्विजगणमें जो व्यक्ति सूर्य्यसाहाय्यार्थ मन्देह नामक राक्षसोंके नाशके लिये जलाञ्जलीत्रय नहीं देते, उन्हें मन्देहत्वप्राप्ति होती है। जबतक सूर्य्य दिखाई न दें, प्रातःकाल दण्डायमान हो, तबतक गायत्रीका जप करेंगे और जबतक नक्षत्र न दिखाई दें, तबतक उपविष्ट हो सायंकालमें गायत्रीका जप करेंगे। निजहिताकांक्षी द्विज, कभी सन्ध्याकालातिक्रम न करेंगे; सुतरां सूर्य्यके अर्द्धोदय और अर्द्धास्त समयमें वज्रोदक प्रदान करेंगे। सन्ध्या समय अतीतकर, विधिपूर्व्वक सन्ध्या करनेसे भी वह विफल होती है, गर्भफलहीन वन्ध्यास्त्री-मैथुन इसका दृष्टान्त है। द्विजगणके बांये हाथमें जल लेकर सन्ध्या करनेसे उस सन्ध्याका नाम "वृषली" है; उससे राक्षसगण ही प्रसन्न होते हैं। सूर्य्योपस्थानमें, "उदयन्त" इत्यादि, "उदुत्यं" इत्यादि, "चित्रंदेवानां" इत्यादि और सर्व्वशेषमें "तच्चक्षुः" इत्यादि सूर्य्योपस्थान मन्त्रगण, सिद्धिप्रद है, सूर्य्योपस्थानसे, सहस्रबार, शतबार, या दशबार गायत्री जप करेंगे। उसमें सहस्रबारका जपना ही श्रेष्ठ है, शतबार जप

मध्यम और दशवार जप अधम है। जो ब्राह्मण एतदन्यतम गायत्रीका जप करते हैं, वह पापमें लिप्त नहीं होते। फिर "विभ्राड्" इत्यादि अनुवाक या पुरुषसूक्त, अथवा शिव-सङ्कल्प, अथवा ब्राह्मणमण्डल जप करेंगे। यह सब उपस्थानमन्त्र सूर्य्य-प्रीतिकर हैं। फिर वेदोक्त या आगमोक्त मन्त्र उच्चारण करते हुए रक्तचन्दन मिश्रित जल, अक्षत, पुष्प और कुश द्वारा सूर्य्यको अर्घ्य प्रदान करेंगे। जो व्यक्ति सूर्य्यकी पूजा करते हैं, वह त्रैलोक्यके पूजक हैं। सूर्य्यदेव पूजित हो, पूजकोंको पुत्र, पशु, धन और आयुः प्रदान करते, उनके रोग-समूह शान्ति करते और सब कामना पूर्ण करते हैं। यह सूर्य्यदेव ही रुद्र हैं, यही विष्णु और यही हिरण्यगर्भ हैं, यह दिवाकर त्रयीरूप हैं। सूर्य्यके सन्तोषसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, इन्द्रादि देवगण, मरीचि-प्रभृति महर्षिगण, मन्वादि मानवगण और सोमपादि पितामहगण, सन्तुष्ट होते हैं। इसतरह सूर्य्यकी, पूजाकर तर्पणमें प्रवृत्त होंगे। द्विजगण, दक्षिण हाथ द्वारा नौ सात या पांच, साग्र समूल अच्छिन्न और गर्भशून्य दर्भ परिग्रहकर, अन्वारब्ध अर्थात् वामहस्तधृत दक्षिण-हस्त द्वारा षड्विनायक, ब्रह्मादि निखिल देवगण और मरीच्यादि मुनिगणको उद्देशकर "तृप्यन्तु" पद उच्चारण करते हुए चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और सुगन्धि कुसुमयुक्त पवित्र जल द्वारा तर्पण करेंगे। फिर निवीती होकर अर्थात् यज्ञोपवीत कण्ठमें लम्बितकर दोनो हाथोंके दोनो अंगठेमें सरल दर्भसमूह धारणकर सनकादि मनुष्य-गणके उद्देशसे सयव जल द्वारा तर्पण करेंगे। फिर प्राचीनावीती (दक्षिणस्कन्ध-लम्बित यज्ञोपवीती) हो द्विगुण दर्भ ले सतिल जल द्वारा कव्यवाह अनलप्रमुख दिव्यपितृगणके उद्देशसे तर्पण करेंगे। मङ्गलाभिलाषी ब्राह्मण रविवार, शुक्रवार, त्रयोदशी, सप्तमी निशाकाल या सन्ध्यासमयमें कभी तिल तर्पण न करें; यदि करें, तो सफेद तिलद्वारा करें। फिर चतुर्दश यमका नाम उच्चारणकर तर्पण करेंगे। फिर वाग्यत हो, वामजानु पतितकर, अपना गोत्र उच्चारण करते हुए पितृतीर्थ द्वारा पितृगणका तर्पण करेंगे। देवगण-तर्पणमें प्रत्येकको एक एक अञ्जलि, सनकादि ऋषिगणको दो दो अञ्जलि, पितृगणको तीन तीन अञ्जलि स्त्रियोंको एक एक अञ्जलि जल दें। उङ्गलीके अगले भागमें देवतीर्थ, उङ्गलीके मूलमें ऋषितीर्थ, अङ्गुष्ठके मूलमें ब्राह्मतीर्थ, करतलमें प्रजापतितीर्थ और अङ्गुष्ठ या तर्ज्जनीमें पितृतीर्थ निर्द्दिष्ट है। "उदीरतां" इत्यादि, "अङ्गिरस" इत्यादि, "आयान्तु नः" इत्यादि, "ऊर्ज्जं वहन्ति" इत्यादि, "पितृभ्यः स्वधायिभ्यः" इत्यादि, "ये चेह" इत्यादि, "मधुवाता" इत्यादि

तीन, और यह नौ मन्त्र "नमोः मवपितर" इत्यादि पढ़कर पितृतर्पण करेंगी। फिर "आब्रह्मस्तम्वपर्य्यन्तं देवर्षि" इत्यादि मन्त्र पढ़ते पढ़ते तर्पणकर "ये चास्माकं" इत्यादि मन्त्र द्वारा वस्त्रनिष्पीड़नोदक भूमिमें निक्षेप करेंगी। तर्पणके उपरान्त अग्निकार्य्य (होम) कर, वेदाभ्यास करेंगी। वह वेदाभ्यास पांच तरहके हैं, वेदग्रहण, (१), वेदार्थविचार (२), अभ्यास (३), जप (४), शिष्योंको शिक्षा-प्रदान (५), फिर लब्ध अर्थका प्रतिपालन और अलब्ध अर्थप्राप्तिके लिये दाताके पास जायेंगी और निज गौरवकी वृद्धि करेंगी। हे द्विजवर! द्विजगणका प्रातः-कृत्य कहा। प्रातःस्नानमें जो अशक्त हैं, वह प्रातःकाल उठ आवश्यक कर्म्म समापनकर शौचाचमन ले दन्तधावनके बाद सर्व्वाङ्ग शोधन करते हुए प्रातःसन्ध्या करेंगी। फिर वेदार्थ और विविध शास्त्र अनुशीलनकर, मेधावी, शुचि या हितकारी शिष्यसमूहको अध्ययन करायेंगी। फिर अलब्धकी प्राप्ति या लब्ध परिपालनादिके लिये राजसमीप गमन करेंगी। फिर विचक्षण व्यक्ति, मध्याह्नकर्म्मकी सिद्धिके लिये मध्याह्नकालमें पूर्व्वोक्त विधि अनुसार स्नानकर, मध्याह्नसन्ध्या करेंगी। मध्याह्नसन्ध्याके बाद यों गायत्रीका ध्यान करेंगी,—"गायत्री नवयौवनविकसिताङ्गी, शुद्ध स्फटिकवत् निर्म्मलकान्तिमती, विष्टुप् छन्दःसमायुक्ता, रुद्रदैवता, कश्यपर्षिसमन्विता, यजुर्व्वेदस्वरूपिणी, प्रणवात्मिका या वृषभपोरि समारूढ़ा ; भक्तगणको अभयमुद्रा उनके हाथमें प्रकाशमान है।" फिर देवपूजाकर, नित्यविधिका अनुष्ठान करेंगी। पाकाग्नि प्रज्वलितकर वैश्वदेव करेंगी। शिम्बी, कोद्रव, माष, कलाय, चणक, तैलपक्व, लवणयुक्त सब तरहके सिद्धान्न, तुवरी, मसूर, स्थूलकलाप वरअटी और भुक्तावशिष्ट या सर्व्व पर्य्युषित द्रव्य वैश्वदेवके परित्याज्य हैं। पहले कुशहस्तसे आचमनकर प्राणायाम करेंगी। "पृष्ठोदिवि" इत्यादि मन्त्र द्वारा पर्य्युक्षण करेंगी। फिर प्रदक्षिण या पर्य्युक्षण करते हुए कुश विस्तीर्णकर, "एषोहदेव" इत्यादि मन्त्र द्वारा अग्निको सुसम्मुख करेंगी। फिर गन्धपुष्प या अक्षत द्वारा वैश्वानरको पूजाकर, प्रणवादिके स्वाहान्तमें "भूरादि" मन्त्रसे तीन आहुति प्रदान करेंगी। ब्राह्मण भूः प्रभृति तीनो मन्त्र एकत्र उच्चारणकर, फिर एक आहुति प्रदान करेंगी। फिर "देवकृतस्य" इत्यादि मन्त्र द्वारा छः आहुति प्रदान करेंगी। इसके उपरान्त मौनी हो एक आहुति अग्निको प्रदान करेंगी। फिर दो बार स्विष्टिकृत होम करेंगी और विश्वदेवगणको आहुति देंगी। फिर भूमिके उत्तरभागमें भूतगणके उद्देशसे बलिप्रदान देंगी। फिर प्राचीनावीती हो, उसके दक्षिणभागमें

पितृगणोद्देशसे बलिप्रदान करेंगे। फिर यक्षोंको ईशाणकोणमें निर्णेजनोदकान्न प्रदान करेंगे, उसके उत्तर ब्रह्मादि देवगणको नमोन्तमन्त्र द्वारा बलिप्रदान देंगे। फिर निवीती हो सनकादिको और प्राचीनावीती हो पितृगणको बलिप्रदान देंगे। षोड़श ग्रासमें एक हन्त, चार ग्रासमें पुष्कल, ग्रासमात्र भिक्षा गृहस्थगणको सुकृतप्रदा होती है। पथिक, क्षीणवृत्ति गुरुपोषक, विद्यार्थी, यति और ब्रह्मचारी यह छः मनुष्य धर्म्मभिक्षुक हैं, पथिक ही यथार्थ अतिथि और श्रुतिपारगामी व्यक्ति ही अनुचान हैं। ब्रह्मलोकाभिलाषी गृहस्थोंके यह दो ही मान्य हैं। चाण्डाल और कुक्कुरको भी अन्न प्रदान करनेसे अन्न व्यर्थ नहीं होता। किसीके अन्नार्थी हो आगमन करनेपर पात्रापात्रकी विवेचना न करेंगे। पतित, चाण्डाल, पाप रोगग्रस्त व्यक्ति, कुक्कुर, काक और कृमिगणके लिये बाहर अन्न निक्षेप करेंगे। ऐन्द्र, वारुण, वायव्य, सौम्य, या नैऋतमें, जो सब काक हैं, भूमिका भोतप्रदत्त यह अन्न ग्रहण करें। वैवस्वत कुलमें समुत्पन्न, श्याम या शवल नामक, जो दो कुक्कुर हैं, मैं उनको पिण्डदान करता हूं, वह अहिंसक हों। देव, मनुष्य, पशु, राक्षस यक्ष, उरग, खग, दैत्य, सिद्धि, पिशाच, प्रेत, भूत, दानव, तृण, तरु, कृमि पाकोठ प्रभृति जो कर्म्मसूत्रमें आवद्ध और क्षुधार्त्त हो, मेरे दिये हुए अन्नकी कामना करते हैं, मैं उनको तृप्तिके लिये अन्न प्रदान करता हूं; इससे उनको परितृप्ति हो।" कहकर भूतबलिप्रदानकर गोदोहन मात्र काल अतिथिके आगमनकी प्रतीक्षाकर, भोजनगृहमें प्रवेश करेंगे। वायसबलि प्रदान न करके नित्य श्राद्ध करेंगे। नित्य श्राद्धकी सामर्थ्य न हो, तो दरिद्र व्यक्ति, अपने भोज्य अन्नसे थोड़ा अन्न लेकर यथोक्त बलिप्रदान करेंगे। नित्य श्राद्धमें देवपक्ष नहीं है और उसमें अन्यान्य श्राद्धकी तरह विशेष विशेष नियमका भी प्रयोजन नहीं। यह नित्यश्राद्ध दक्षिणारहित है, इसमें दाता या भोक्ताको ब्रह्मचर्य्यका प्रयोजन नहीं है। सुस्थमति अनातुर व्यक्ति इस तरह पितृयज्ञका अनुष्ठानकर, प्रशस्त आसनसे उपवेशन करते हुए शोभन गन्ध और माल्य धारणकर, शुचिवस्त्रयुग्म परिधानकर, प्रशस्त अन्तःकरणसे पूर्व्वमुख या उत्तरमुख हो श्राद्धशेष भोजनके उपरान्त, शिशुगणके साथ भोजन करेंगे। आपोशन विधान द्वारा अन्नके ऊपरी और अधोभागसे अनग्नत्व सम्पादनकर सुबुद्धि द्विज, भोजन करेंगे। प्रति भुवनपति और भूतपतिको स्वाहान्त मन्त्र उच्चारणकर एक एक ग्रास अन्न भूमिमें प्रदान करेंगे। पहले एकबार आचमनकर कुशहस्त और प्रसन्नचित्त हो जठररूप कुण्डको अग्निसे

प्राणादि पञ्चवायुको पांच बार अन्नाहुति प्रदान करेंगे। (यही आपोशन विधि) है। जो मनुष्य कुशहस्तसे भोजन करते हैं, उनके अन्नमें केश और कोटादिपातजन्य दोष नहीं होता; अतएव कुश हस्तसे भोजन करनेकी विधि है। जबतक रुचि रहे, तबतक अन्न भोजन करेंगे और भोजनके समय अन्नका गुणागुण न कहेंगे। जबतक अन्नका गुणागुण कहा नहीं जाता, तबतक पितृलोग उस अन्नका भोजन करते हैं। इसलिये जो मनुष्य मौनी हो भोजन करते, वह केवल अमृत ही भोजन करते हैं। फिर दुग्धतक्र अथवा केवल जलपानकर "अमृताविधानमसि" इस मन्त्रको उच्चारण करते हुए एक गण्डूषजल पानकर पीतावशिष्ट वह जल वच्यमाण मन्त्रको पढ़ते पढ़ते भूमिमें निक्षेप करेंगे। "जो अनन्तवर्ष रौरवनामक नरकमें वास करते हैं और जो अप्रक्षालितहस्त मनुष्यके दक्षिण हाथके अङ्गुष्ठमूलके उच्छिष्ट जलकी इच्छा रखते हों, मेरा उत्सृष्ट यह जल उनके पक्षमें अक्षय हो।" मेधावी व्यक्ति फिर आचमनकर शुचि हो यत्न सहित हाथमें जल लेकर यह मन्त्र उच्चारण करेंगे, "जो पुरुष परिमाणसे और जो अङ्गुष्ठका आश्रयकर विद्यमान हैं, सब जगत्के अधीश्वर, प्रभु विश्वभुक् प्रसन्न हों।" इस तरह अन्न भोजनके बाद हाथ पैर धोकर भुक्तान्न परिपाकके लिये वच्यमाण मन्त्रसमूह पढ़ेंगे," पवन प्रेरित मेरी जठराग्नि, मेरी सब पार्थिव धातुकी परितुष्टिके लिये आकाशप्रदत्त अवकाश लाभकर भुक्त पदार्थको सब जीर्ण करें, मुझे सुख हो। यह भुक्त अन्न, प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान नामक शरीरस्थित वायुगणको परितुष्ट करें और इससे अव्याहत सुख हो। समुद्र, बाड़वाग्नि, सूर्य्य और सूर्य्यनन्दन यह सब मेरा भक्षित अन्न जीर्ण करें।" फिर मुखशुद्धिकर पुराण श्रवणादि द्वारा दिवसका अवशिष्ट भाग अतिवाहितकर, सायंकालकी सन्ध्या प्रारम्भ करेंगे। गृहमें सन्ध्या, गोष्ठमें सन्ध्या और नदीतीरमें सन्ध्या करनेसे यथाक्रमसे दशगुण अधिक फल होता है और नदीसङ्गममें सन्ध्या करनेसे उसकी अपेक्षा शतगुण अधिक फल होता है; शिवसमीपमें सन्ध्याका फल अनन्त है। वहिः प्रदेशमें सन्ध्याकी उपासना करनेसे, दिवाकृत मैथुनजन्य और मिथ्याकथनजन्य, मद्यगन्धआघ्राणजन्य प्रभृति पाप विनष्ट होता है। 'गायत्री सरस्वती और सामवेदस्वरूपा, वशिष्ठ ऋषिकर्त्तृक समन्विता, उनका अङ्ग कृष्णवर्ण, परिधानमें भी कृष्णवर्ण वस्त्र, वह ईषत् स्खलितयौवना, गरुड़वाहना, विष्णुदेवता, विघ्नविनाशिनी, वह जगती नामक छन्दयुक्ता और एकाक्षरस्वरूपा हैं।" सायंकालकी इस तरह गायत्रीका

ध्यान करेंगी। सुधीव्यक्ति, "अग्निश्च" इत्यादि मन्त्र द्वारा आचमनकर, पश्चिम ओर मुखकर जबतक नक्षत्र न दिखाई दें, तबतक गायत्रीका जप करेंगी। सायंकालको अतिथिके उपस्थित होनेपर उसे मधुर वाक्य, स्थान, आसन और जल प्रदानकर सम्मानपूर्व्वक आहारादि करावेंगी। सुधी व्यक्ति इस तरह रातका पहला प्रहर अतिवाहितकर, फिर शय्यापर जावेंगी। इस तरह वेदाध्ययनाध्यापनादि द्वारा दैनिक कर्म्मसाधनकर अनतिदूरभावसे एक काष्ठमयी शय्यापर शयन करेंगी। यह अतीव नित्यकर्म्म मैंने संक्षेपमें तुमसे कहा। यह सब कर्म्म अनुष्ठान करनेसे ब्राह्मण, कभी अवसन्न नहीं होते।

पञ्चत्रिंश अध्याय समाप्त॥ ३५॥

षट्त्रिंश अध्याय।

ब्रह्मचारिसदाचार।

स्कन्दने कहा, हे कुम्भयोने! जिसके सुननेसे बुद्धिमान व्यक्तिको अज्ञानतिमिरमें प्रवेश करना नहीं पड़ता, मैं फिर सदाचारके सम्बन्धमें विशेष कुछ और भी कहता हूं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, इन तीन वर्णोंको द्विज कहते हैं। यहलोग प्रथम जन्म मातासे, द्वितीय जन्म उपनयनसे इन वर्णत्रयके गर्भाधानसे श्मशानान्त क्रियाकलाप, वेदविहित है। सुबुद्धि व्यक्ति, मूला और मघा नक्षत्र त्यागकर, ऋतुकालमें गर्भाधान करेंगी। गर्भस्पन्दनके पहले पुंसवन करेंगी। फिर षष्ठ या अष्टममाससे गर्भसे सीमन्तोन्नयन करेंगी। फिर पुत्र उत्पन्न होनेपर, जातकर्म्म करेंगी। एकादश दिन नामकरण करेंगी चतुर्थमासमें गृहसे निष्क्रामण करेंगे। छठें महीने बालकका अन्नप्राशन करेंगे। एक वर्ष पूर्ण होनेपर या कुलाचारानुसार बालकका चूड़ा-कर्म्म करेंगी। यह सब क्रिया करनेसे, बीज-गर्भज दोष विनष्ट होता है। स्त्रियां इन सब क्रियाओंको अमन्त्रक करेंगी। केवल विवाह समन्त्रक करें। सप्तम या अष्टम वर्षमें ब्राह्मणको उपनयत प्रदान करेंगी और क्षत्रियका एकादश वर्षमें अथवा वैश्यका द्वादश वर्षमें कुलाचारानुसार उपनयन करेंगी। ब्रह्मतेज-वृद्धिके अभिलाषी विप्र पांचवें वर्षमें और बलार्थी क्षत्रिय या कृष्यादिवृत्तिवृद्धिके अभिलाषी वैश्य यथाक्रमसे षष्ट और अष्टम वर्षमें उपनीत होते हैं। गुरु, शिष्यका उपनयन संस्कारकर उसे महाव्याहृतिपूर्व्वक वेदाध्ययन करावेंगी और शौचाचारमें नियुक्त करेंगी। पूर्व्वोक्त विधिक्रमसे, मलत्याग और शौचके बाद दन्तजिह्वा परिशोधनकर आचमन करेंगी। फिर जलदैवत "मन्त्रसमूह" द्वारा स्नानकर यत्नसहित प्राणायाम करेंगी। सन्ध्याद्वयमें सूर्य्यका उपस्थानकर

अग्निकार्य्य सम्पादन करते हुए "अमुक गोत्र मैं, (अपना नाम) आपका अभिवादन करता हूं" कहकर ब्राह्मणका अभिवादन करेंगे। जो मनुष्य ब्राह्मणोंका अभिवादन और वृद्धोंकी सेवा करेंगे, प्रत्यह उनकी आयु, यश, बल, और बुद्धिकी वृद्धि होगी। गुरुद्वारा आहूत हो, विद्याध्ययन करेंगे और प्रत्यह लब्ध द्रव्य उन्हें निवेदन करेंगे। कायमनोवाक्यसे सदा उनका हित करेंगे। जो साधु, विश्वस्त, ज्ञानदाता, वित्तदाता, शक्त, कृतज्ञ, शुचि, अद्रोहक और अनुसूयक हैं, उन्हें धर्म्मत अध्ययन करावेंगे। अर्थकी आशा करना उचित नहीं। ब्रह्मचारी होकर भी दण्ड, मेखला, उपवीत और अजिन धारण करें और आत्मजीवनके लिये अनिन्दित ब्राह्मणके घर भिक्षाचरण करेंगे। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके भिक्षावाक्यमें यथाक्रमसे, आदि, मध्य और अन्तमें भवत् शब्द रहेगा। (ब्राह्मण कहेंगे "भवन् भिक्षां देहि," क्षत्रिय कहेंगे, "भिक्षां भवन् देहि" वैश्य कहेंगे, "भिक्षां देहि भवन्") गुरुकी अनुमतिसे मोनी हो भोजन करेंगे अन्नके प्रति घृणा न करेंगे। एकस्वामिक अन्न भोजन निषिद्ध है; तब भी श्राद्धमें और आपत्कालमें एकान्नस्वामिक अन्न भोजन कर सकते हैं। अति भोजन रोगकर, आयुःक्षयकर, पुण्यगर्हित और लोकविद्विष्ट है; अतएव वह परित्याज्य है।

द्विजोत्तम एक दिवाभागमें दोबार अन्न भोजन कभी न करेंगे। अग्निहोत्र विधिज्ञ द्विज, दिनमें एक बार और रातमें एक बार भोजन करेंगे। मधुपान, मांसभोजन, प्राणिहिंसा, उदयादि, समयमें सूर्य्यदर्शन, अञ्जनराग, स्त्रीसम्भोग, पर्य्युषित भोजन, उच्छिष्टभोजन और परनिन्दा परित्याग करेंगे। ब्राह्मणके उपनयनका चरमकाल पन्द्रहवर्ष दोमास पर्य्यन्त क्षत्रियका इक्कीस वर्ष दो मास और वैश्यका चौबीस वर्ष दो मास पर्य्यन्त है। इस निर्दिष्ट समयके बाद भी जो अनुपनीत रहते हैं, वह पतित और धर्म्मवर्जित हैं। व्रात्यस्तोम यज्ञ द्वारा उनका पातित्य दूर होता है। पूर्व्वोक्त सावित्री-पतित व्यक्तिगणके साथ सम्बन्ध-बद्ध नहीं होगा। द्विजकी तीनवर्णके कृष्णसारचर्म्म, रुरुचर्म्म और छागचर्म्म यथाक्रमसे उत्तरीय है। शणसूत्रनिर्म्मित वस्त्र, क्षौमवस्त्र और मेषलोमसम्भूत वस्त्र द्विजातियोंकी यथाक्रमसे परिधेय है। ब्राह्मणकी मेखला मौञ्जी, क्षत्रियकी मौर्व्वी और वैश्यकी शणतन्तुमयी है। मेखला त्रिवित्त (तीन पेंच), सम और श्लक्ष्ण होगा। मुञ्जादितृणाभावसे मौञ्जी दुर्घट होनेसे कुश, अश्मन्तक तृण, अथवा बल्वज तृण द्वारा मेखला कर्त्तव्य है। मेखला एक ग्रन्थियुक्त, ग्रन्थित्रययुक्त अथवा पञ्चग्रन्थियुक्त होगी, त्रिवर्णत्रयका उपवीत यथाक्रमसे कार्पासस्त्रनिर्म्मित, शणसूत्रनि-

क्षित और मेषलोमनिर्म्मित होगा। उपवीत विवृत्त होगा और दक्षिणावर्त्ती उपनीत आयुवृद्धिकर है। विल्ववृक्ष अथवा पलाशवृक्षका दण्ड ब्राह्मणको, न्यग्रोध अथवा खदिरवृक्षका दण्ड क्षत्रियको और पीलु अथवा उडुम्बरवृक्षका दण्ड वैश्यको होगा। दण्डका ऊर्द्ध परिमाण—ब्राह्मणके मस्तक पर्य्यन्त, क्षत्रियके ललाट पर्य्यन्त और वैश्यके नाक पर्य्यन्त होगा। दण्ड त्वकयुक्त होगा और अग्नि द्वारा दूषित न होगा। अग्नि प्रदक्षिण और सूर्य्योपस्थानकर ब्रह्मचारी दण्ड, चर्म्म और उपनीतयुक्त हो यथाकीर्त्तित भिक्षाचरण करेंगे। प्रथम भिक्षा माता, मातृष्वसा, भगिनी अथवा पितृष्वसा प्रभृतिके पास या जो रमणी "न" न करे, उससे लेना कर्त्तव्य है। जबतक वेदाध्ययन और वेदव्रत करते हैं, तबतक ब्रह्मचारी पदवाच्य रहते हैं; इसके उपरान्त व्रतस्नानकर गृहस्थ होते हैं। ऐसे ब्रह्मचारीका नाम "उपकुर्व्वाणक" है। दूसरी तरहके ब्रह्मचारीका नाम "नैष्ठिक" है; यह ब्रह्मचारी आजीवन गुरुकुलमें वास करते हैं। जो व्यक्ति गृहस्थाश्रम ग्रहणकर फिर ब्रह्मचारी होते हैं, वह न ब्रह्मचारी,न यति, न वाणप्रस्थ—उनका कोई आश्रम ही नहीं है। द्विज अनाश्रमी हो एक दिन भी न रहेंगे; कारण आश्रम व्यतीत रहनेसे, द्विजको प्रायश्चित्त करना होता है। आश्रमहीन व्यक्ति, जप, होम, व्रत, दान, स्वाध्याय और पितृतर्पण ही क्यों न करें, उन्हें फल नहीं होता। मेखला चर्म्म और दण्ड प्रभृति ब्रह्मचारीका चिह्न है; ब्रह्मयज्ञादि गृहस्थका चिह्न और नखलोमादि वाणप्रस्थका चिह्न है; त्रिदण्ड प्रभृति यतिका लक्षण है। यह सब लक्षणहीन आश्रमी प्रत्यह प्रायश्चित्त करनेके योग्य हैं। कमण्डलु, दण्ड, उपवीत और चर्म्म जीर्ण होनेपर ब्रह्मचारी उसे जलमें फेंक मन्त्र उच्चारण करते हुए दूसरा कमण्डलु प्रभृति ग्रहण करेंगे। गृहस्थाश्रम-प्रतिपत्तिके लिये ब्राह्मणादि द्विजत्रयका यथाक्रमसे षोड़श वर्षमें, द्वाविंश वर्षमें और चतुर्व्विंश वर्षमें "केशान्त" संस्कार होगा। तपस्या, यज्ञ, व्रत और अन्यान्य सर्व्वप्रकार शुभकार्य्यकी अपेक्षा द्विजगणके पक्षमें एक मात्र श्रुति ही मोक्षलक्ष्मीका हेतु है। वेदके आरम्भमें और अवसानमें प्रणवयोग करेंगे। कारण उक्तरूपसे प्रणवहीन वेद पढ़नेसे भी वह सिद्धिप्रद नहीं होता। प्रणवादि महाव्याहृतित्रय मन्वित त्रिपदा गायत्री वेदका मुख है। प्रणव महाव्याहृति और गायत्री एतत्रय है, नियमसे एक मासतक प्रत्यह ग्रामवाह्यभागमें किञ्चिदधिक सहस्र जप करनेसे महापातकादिसे भी मुक्तिलाभ होता है। जो मनुष्य अनन्य चित्तसे किञ्चिदधिक एक वर्षतक प्रत्यह इसका जप करते हैं, वह आकाशस्वरूप

और निर्म्मलात्मा हो परब्रह्मको प्राप्त होते हैं। तीन वर्णात्मक प्रणव, महाव्याहृति-त्रय और गायत्रीका तीनपाद—तीन वेदसे दोहन किया गया है। जो वेदज्ञ व्यक्ति, प्रातःसन्ध्या और सायंसन्ध्यामें यह अक्षर (प्रणव) और व्याहृतिपूर्व्विका गायत्रीका जप करते हैं, उन्हें समग्रवेद-पाठ-पुण्य होता है। विधियज्ञकी अपेक्षा जपका फल दशगुण पाया जाता है। क्योंकि, विधियज्ञकी अपेक्षा जपयज्ञ दशगुण श्रेष्ठ है; यह शास्त्रका वचन है। जपयज्ञोंमें और रहस्य जपयज्ञ पूर्व्वापेक्षा शतगुण श्रेष्ठ है; मानस जपयज्ञ उसकी अपेक्षा भी सहस्रगुण श्रेष्ठ है। द्विज, अपनी शक्तिके अनुसार वेदत्रय, वेदद्वय अथवा एक वेदका अध्ययन करनेसे स्वर्णपूर्ण पृथिवी-दानका फल पाते हैं। द्विजोत्तम तप-स्यार्थ, सदा वेदाभ्यास ही करेंगे। वेदा-भ्यास ही ब्राह्मणकी परम तपस्या कही गई है। वेदाध्यन परित्यागकर दूसरे शास्त्रके पढ़नेकी इच्छा करना और दुग्ध-वती धेनुको परित्यागकर ग्रामशूकरीदो-हनकी इच्छा करना बराबर है। जो द्विज, शिष्यको उपनीतकर सकल्प और सरहस्य वेदअध्यापन करते हैं, पण्डितगण उन्हें आचार्य्य कहते हैं। जो वृत्तिके लिये वेदका एक देश अथवा वेदाङ्गसमूह अध्ययन करते हैं, पण्डित लोग उन्हें "उपाध्याय" कहते हैं। जो द्विज, यथाविधि गर्भाधा-नादि कर्म्म करते हैं और अन्न द्वारा पालन करते हैं, संसारमें वह पिता अर्थात् 'गुरु' कहे जाते हैं। जो कृति होते और जिनका अग्न्याधेयकर्म्म है, जो पाकयज्ञ और अग्निष्टोमादियज्ञ करते हैं, वह "ऋत्विक्" नामसे संसारमें अभिहित हैं। उपाध्यायकी अपेक्षा आचार्य्यका गौरव दशगुण अधिक है, आचार्य्यसे दशगुण गौरव पिताका और पिताकी अपेक्षा सहस्रगुण अधिक गौरवान्विता माता हैं। ज्ञानानुसार ब्राह्मणोंकी ज्येष्ठता, बाहुवीर्य्यानुसार क्षत्रियोंकी ज्येष्ठता, धन-धान्यानुसार वैश्योंकी ज्येष्ठता और शूद्रों-की ज्येष्ठता जन्मानुसार है। काष्ठमय हस्ती, चर्म्ममय मृग और अध्ययनवर्ज्जित ब्राह्मण एक समान हैं। यह तीनो पदार्थ नामधारी मात्र हैं। ब्रह्मचारी द्विज, अ-निच्छाक्रमसे स्वप्नावस्थामें स्खलित वीर्य्य होनेसे, स्नानकर सूर्य्यकी पूजाकर तीन बार "पुनर्म्माम्" इत्यादि मन्त्रका जप करेंगे। ब्रह्मचारी, स्वधर्म्मनिरत वेदय-ज्ञार्थानुष्ठायी मनुष्योंके घरमें प्रत्यह, प्रयत-भावसे भिक्षा करेंगे, आतुरता छोड़कर सातदिन भिक्षाचरण और अग्निसमिन्धन न करनेसे "अवकीर्णिप्रायश्चित्त' करना होता है। गुरुके दृष्टपथमें या-इच्छाकी चेष्टा न करेंगे। जहां गुरुकी निन्दा हो वहां न जावेंगे। उसके परोक्षमें भी गुरुनाम निर्व्विशेषण ग्रहण गुरुनिन्दा ही अथवा

गुरुकी परिवाद (विद्यमान दोषकीर्त्तन) हो, वहां दोनो कानको आच्छादनकर रहें अथवा उस जगहसे अन्यत्र चले जावेंगे। गुरुका परिवाद करनेसे गर्द्दभ-योनि प्राप्त होती है, गुरुनिन्दा करनेसे कुक्कुरयोनि प्राप्त होती है। गुरुद्वेष्टा क्षुद्र कीट होते हैं और गुरुसे पहले भोजन करनेवाले, कृमियोनिको प्राप्त होते हैं। गुणदोषाभिज्ञ विंशतिवर्षीय शिष्य, युवती गुरुपत्नीके अति साध्वी होनेपर भी कभी चरण ग्रहणकर उनका अभिवादन न करेंगे। स्त्रियोंका स्वभाव चञ्चल है, पुरुषोंमें भी दोष है; अतएव पण्डितलोग प्रमदारके पक्षमें कभी असावधान न होंगे। कारण, रमणी पण्डित मूर्ख सबको ही अतिशय मनवाञ्छा सम्पादन करती हैं, अथवा सूत्रबद्ध पक्षीकी तरह लोगोंको आत्मवशवर्त्ती कर डालती हैं। माता, दुहिता और भगिनीके साथ भी निर्जन सेवा न करेंगे। प्रबल इन्द्रियनिचय, पण्डितोंको भी मोहित करती हैं। यत्नसे भूमि खोदते खोदते उससे जो फल मिलता है, उसी तरह शिष्य, गुरुशुश्रूषा द्वारा गुरुसे विद्यालाभ करते हैं। ब्रह्मचारीको शयनावस्थामें ही यदि सूर्य्य उदय हों, अथवा प्रमादतः शयनावस्थामें ही यदि सूर्य्यास्त हों, तो उक्त ब्रह्मचारी गायत्री जपते हुए एक दिन उपवास करेंगे। पिता माता पुत्र होनेपर जो क्लेश सहा करती हैं, सौ वर्षमें भी वह ऋण परिशोधनीय नहीं है। अतएव पितामाताका और गुरुका प्रियानुष्ठान करना कर्त्तव्य है। इन तीनको तुष्ट रखनेपर, सब तपस्याका फल मिलता है। इन तीनजनकी शुश्रूषा ही परम तपस्या कही गई है। उन लोगोंको अतिक्रमकर जो कुछ करेंगे, वह काम कदाच न होगा। जो सुबुद्धि व्यक्ति इन तीन आदमियोंकी आराधना करते हैं, वह त्रिलोकजयी हैं; उनकी सन्तोष-वृद्धि करनेसे, मनुष्य स्वर्गमें देववत्क्रीड़ा करनेमें समर्थ होते हैं। वह कृती व्यक्ति मातृभक्तिबलसे भूर्लोक, पितृभक्तिबलसे भुवर्लोक और गुरुशुश्रूषाबलसे स्वर्लोक जयमें समर्थ होते हैं। इनका सन्तोषसाधन ही मनुष्यके लिये धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष कहे जाते हैं। और सब उपधर्म्म कहे जाते हैं। क्रमानुसार वेदत्रय, वेदद्वय अथवा एक वेद अध्ययनकर अस्खलित-ब्रह्मचर्य्य द्विज, गृहस्थाश्रममें प्रविष्ट होंगे। विश्वेश्वरकी अनुग्रहसे ही ब्रह्मचर्य्य अस्खलित रहता है, विश्वेश्वरकी परम अनुग्रह ही काशीप्राप्तिका हेतु है। काशीप्राप्त होनेसे, ज्ञान होता है और ज्ञानसे प्रभावसे निर्वाण प्राप्ति होती है। बुद्धिमान् व्यक्तियोंका सदाचार प्रयत्न निर्वाणमुक्तिके लिये ही है। गृहस्थाश्रममें जैसा सदाचार है, वैसा और किसी आश्रममें नहीं। अतएव विद्यासमूह अध्ययन करनेपर गृह-

स्थाश्रमका आश्रय लेंगे। पत्नी यदि अनुकूला हो, तो गृहस्थाश्रमकी अपेक्षा अच्छा और कोई नहीं है। दम्पतिका परस्पर आनुकूल्य त्रिवर्ग प्राप्तिका हेतु है। पत्नी यदि अनुकूला हो, तो स्वर्गका प्रयोजन हो क्या है? और पत्नी यदि प्रतिकूला हो, तो उसकी अपेक्षा नरक और क्या है? गृहस्थाश्रमका फल सुख, किन्तु सुखका मूल भार्य्या है; ऐसा होनेसे निश्चय त्रिवर्गकी प्राप्ति है। मन्दबुद्धिगण प्रमदागणको जलौकाके साथ उपमित करते हैं। किन्तु विचार करनेसे रमणी और जलौकामें महान् प्रभेद है। क्षुद्रा जलौका, केवल रक्त ही ग्रहण करती है, प्रमदा, मन, धन, बल, सुख—सदा ग्रहण करती है। दक्षता, सन्तान-सम्पत्ति, साध्वीत्व, प्रियवचन और पतिका आनुकूल्य यह सब गुणयुक्ता भार्य्या स्त्रीरूपधारिणी लक्ष्मी हैं। गुरुकी अनुमति क्रमसे व्रतसमापन और वेदसमापनके बाद स्नानकर सवर्णा सुलक्षणा रमणीसे विवाह करेंगे। पिताकी असमोत्रा और मातामहकी असपिण्डा कन्या, द्विजगणके धर्म्मवृद्धिकर विवाह कार्य्यमें योग्या हैं। जिस कुलमें अपस्मार रोग, क्षय रोग अथवा श्वित्र रोग है, जिस कुलमें अपवाद है और जिस वंशमें कन्या ही अधिक उत्पन्न हुई हैं, विवाहके सम्बन्धमें वह सब कुल परित्याज्य हैं। द्विज, रोगहीना, भाग्यमती, सौम्यवदना, मृदुभाषिणी और अपनी अपेक्षा कुछ वयःकनिष्ठा कन्यासे विवाह करेंगे। सुधी व्यक्ति, पर्व्वत, नक्षत्र, वृक्ष, नदी, सर्प, पक्षी, अथवा भृत्यवाचक जिस कन्याका नाम हो, उससे विवाह न करेंगे; सौम्यनाम्नी रमणीसे विवाह करेंगे। हीनाङ्गी, अधिकाङ्गी, अतिदीर्घा, अतिकृशा, लोमहीना और अतिलोमा, इन सबको और जिनके केश रुक्ष या स्थूल हैं, उन कन्यासे विवाह न करेंगे। कुलहीना कन्यासे विवाह न करेंगे। मोहवश कुलहीना कन्यासे विवाह करनेपर, आत्मसन्तानद्वारा भी हीनता प्राप्त होती है। पहले लक्षणकी परीक्षाकर, तब कन्यासे विवाह करेंगे। सुलक्षण और सदाचार भार्य्या पतिकी आयु बढ़ाती हैं। हे कुम्भयोने! तुमसे यह ब्रह्मचारीका सदाचार कहा। अब प्रसङ्गक्रमसे स्त्रियोंके लक्षण कहता हूं।

षट्त्रिंश अध्याय समाप्त ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंश अध्याय ।

स्त्री-लक्षण ।

स्कन्दने कहा, स्त्रीके सुलक्षणा होनेपर घरमें सदा सुखभोग होता है, अतएव सुखसमृद्धिके लिये पहले स्त्रियोंके लक्षणकी परीक्षा करना उचित है। देह, देहका आवर्त्त, गन्धकान्ति, अतःकरण, स्वर, गति और वर्ण—पण्डित लोग यह अष्टविध

लक्षण कहते हैं। हे मुने! पादतलसे आरम्भकर केश पर्य्यन्त सर्व्वाङ्गका शुभाशुभ लक्षण क्रमसे कहता हूं, सुनो; पद, पदतल, पदतलरेखा, पदाङ्गुष्ठ, पदाङ्गुलि, पदनख, पादपृष्ठ, गुल्फद्वय, पार्ष्णिद्वय, जङ्घाद्वय, रोमसमूह, जानुद्वय, ऊरुद्वय, कटिद्वय, नितम्ब, स्फिक, स्त्री-अङ्ग, जघन, वस्ति, नाभि, कुचद्वय, पार्श्व उदर, मध्य-भाग, त्रिवलि, रोमावली, हृदय, वक्षःस्थल, स्तनद्वय, स्तनाग्र, जत्रु, स्कन्ध, कक्ष, बाहु-द्वय, मणिबन्ध, करद्वय, पाणिपृष्ट पाणितल, पाणितलकी रेखा, कराङ्गुष्ठ, कराङ्गुलि, करनख, पृष्ठ, कृकाटिका, कण्ठ, चिबुक, हनूद्वय, कपोलद्वय, मुख, अधर, उष्ठ, दन्त, जिह्वा! जिह्वाका अधोभाग, तालु, हास्य, नासिका, क्षुत नयनद्वय, पक्ष, भ्रूयुगल, कर्ण, ललाट, मस्तक, सीमन्त और केश यह षड़धिक यष्टि अवयव रम-णीके अङ्गलक्षणके उत्तम स्थान हैं। स्त्रि-योंका स्निग्, मांसल, कोमल, समविन्यस्त, स्वेदहीन, उष्ण और रक्तवर्ण पदतल, बहुभोगका सूचक कहलाकर स्मृति हुआ है। रुक्ष, विवर्ण, कर्कश, खण्डित प्रतिबिम्ब, (पूरी भूमिमें जिसका दाग तरह न पड़े), सूर्प्पाकृति और विशुष्क पदतल दुःख दुर्भा-ग्यका सूचक है। चक्र, स्वस्तिक, शङ्ख, पद्म, ध्वजमीन, और आतपत्ररेखा, जिनके पैरमें हैं, वह राजपत्नी होती हैं। जिस रमणीके पदतलमें ऊर्द्धरेखा मध्यमा-ङ्गुलीके साथ मिला हो, उसे सम्पूर्ण सुख भोग होता है और इन्दूर सर्प और कव्वेकीसी रेखा दुःखदारिद्र्यका सूचक है। उन्नत, मांसल वर्त्तुल अङ्गुष्ठ अतुलनीय सुखभोगका सूचक है। वक्र, ह्रस्व और चिपटा अङ्गुष्ठ सुखसौभा-ग्यका विनाशक है। विशाल अङ्गुष्ठ होनेसे विधवा होतीं और दीर्घाङ्गुष्ठा नारी दुर्भगा होती हैं। घनसन्निवेश समुन्नत कोमल उंगली ही प्रशस्त हैं। दीर्घ उंगली होनेसे, कुलटा और कृश उंगली होनेसे अति निर्द्धना होती हैं। ह्रस्व उंगली अल्प आयुका लक्षण है, कुटिल उंगलीसे कुटिल व्यवहारयुक्ता होती हैं। चिपटी उंगली होनेसे दासी होती और विरला-ङ्गुलि दारिद्र्यका सूचक है। पदाङ्गुलिचय यदि परस्पर उपर्य्युपरि चढ़ी हो, तो वह रमणी बहु पतिको (रक्षक) विनष्टकर पराधिकी दासी होती हैं। जिस रमणीके चलनेसे मार्गभूमिकी धूल उड़ती हो, वह कुलत्रय विनाशिनी पांशुला होकर रहती हैं। जिस रमणीकी कनिष्ठा उंगली चलनेके समय भूमि स्पर्श न करे, वह एक स्वामीको विनष्टकर दूसरे स्वामीको परिग्रह करेंगी। जिसकी अनामिका उंगली, भूतल स्पर्श नहीं करती, वह दो स्वामीको निहत करती हैं। जिसकी मध्यमा उंगली भूतल स्पर्श न करे, वह तीन स्वामीको निहत करेंगी। अनामिका

और मध्यमा, यह दो उंगली जिनके नहीं हैं, अथवा छोटी हैं, वह नारी पतिहीना होती हैं, जिसकी तर्ज्जनी उंगली अङ्गुष्ठके साथ एक बारगी हो मिल गई हो, वह कन्या समयसे ही कुलटा होती हैं, यह निश्चित प्रवाद है। स्निग्ध, समुन्नत, ताम्रवर्ण, सुवृत्त पदनख शुभसूचक हैं। स्त्रियोंका उन्नत, स्वेदहीन, कोमल, मसृण, मांसल और शिराविहीन पादपृष्ठ राज्ञीत्वका सूचक है। मध्यनम्र पादपृष्ठ दारिद्राका सूचक और शिरावहुल पादपृष्ठवाली रमणी सदा पथिभ्रमणशीला होती हैं। पादपृष्ठ रोमाढ्य होनेसे, दासी होना पड़ता है। मांसहीन पादपृष्ठ दुर्भाग्यका लक्षण है। शिराहीन सुवर्त्तुल गूढ़गुल्फ मङ्गलप्रद कहा जाता है। देखनेमें निम्न या शिथिल गुल्फद्वय दुर्भाग्यसूचक हैं। जिस रमणीका पार्ष्णिभाग समान है, वह शुभा है, स्थूलपार्ष्णि नारी दुर्भगा हैं। जिनका, पार्ष्णि उन्नत है वह नारी कुलटा होती हैं, दीर्घपार्ष्णिमती नारी दुःखभोगिनी होती हैं। जिनके जङ्घाद्वय बराबर हैं, स्निग्ध, रोगहीन, शिराहीन, क्रमवर्त्तुल और अति मनोहर होंगी, वह राजपत्नी होंगी। एक एक रोमकूपमें जिनके एक एक रोम हैं, वह नारी राजपत्नी होती हैं। दो रोम भी सुखका लक्षण है। किन्तु जिनके तीन तीन रोम रहते हैं, वह वैधव्य दुःखभागिनी होती हैं। वर्त्तुल; मांसल जानुयुगल प्रशस्त हैं। जिनके निर्म्मांस जानु हैं, वह स्वैरिणी होती हैं। अवर्त्तुल जानु दारिद्र्यका सूचक है। जिनका ऊरुद्वय, शिराहीन, करिशुण्डाकृतिघन, मसृण, सुवर्त्तुल, रोगरहित हैं, वह रमणी राजपत्नी होती हैं। रोमश ऊरु वैधव्यसूचक है, चिपटी ऊरु दुर्भाग्यसूचक। बीचसे छिद्रयुक्त ऊरु महादुःखका सूचक और कर्कशत्वक ऊरु दारिद्र्यसूचक है। रमणियोंकी चतुर्व्विंशति उंगली परिमित, समुन्नत नितम्ब शोभित चतुरस्र कटि ही प्रशस्त है। निम्न, चिपटी, दीर्घ, मंसहीन, कर्कश, ह्रस्व और रोमयुक्त कटि दुःखवैधव्यका सूचक है। रमणियोंका उन्नत, मांसल, विशाल नितम्ब महाभोगका सूचक कहा जाता है, दूसरी तरहका नितम्ब असुखकर जानेंगे। जिस नारीका स्फिकद्वय कपित्थफलवत् वर्त्तुल, मांसल, घन और बलहीन है, उन्हें सन्तोष और सुखवृद्धि होती है,.................. विपुल, कोमल और अल्प उन्नत वस्ति प्रशस्त है। रोमश, शिराल और रेखाङ्कित वस्ति शोभन नहीं है। गम्भीर और दक्षिणावर्त्त नाभि, सुख सम्पदका सूचक है। वामावर्त्त, उत्तान और व्यक्तग्रन्थि नाभि, शुभसूचक नहीं। विशाल कुक्षियुता नारी सुखिनी होतीं और अनेक पुत्र प्रसव करती है। मण्डूकके उदरकी तरह जिसकी कुक्षि है, उसका पुत्र राजा होता

है। जिसकी कुचि उन्नत है, वह वन्ध्या होती हैं; जिसकी कुचि वलियुक्त है, प्रव्रजिता और जिसकी कुचि आवर्त्त युक्त है वह दासी होकर रहती हैं। जिन स्त्रियोंका सम, मांसल मन्नास्थि, कोमल और सुदृश्य है, पार्श्वदेश सौभाग्य और सुखका सूचक है, और जिनका पार्श्वद्वय, दृश्यशिरा उन्नत रोमयुक्त है, वह अपत्यहीना, दुःशीला और दुःखयुक्ता हैं। जिनका उदर क्षुद्र, शिराहीन और मृदुत्वक् है, वह भोगाढ्य होतीं और बहुत मिष्टान सेवन करतीं और कुम्भ, कुष्माण्ड, मृदङ्ग और यवाकार उदर किसी चीजसे पूर्ण नहीं होता और इस प्रकारका उदर दारिद्र्यका सूचक है। जिसका उदर अतिशय विशाल हैं, वह अपत्यहीना और दुर्भगा हैं; जिनका उदर लम्बमान है, वह श्वशुरघातिनी और देवरघातिनी होती हैं। जिनका मध्यदेश कृश है, वह नारी सौभाग्यवती और जिनका मध्यदेश त्रिवलीयुक्त है, वह रमणी भोगसम्पन्ना होती हैं। जिनकी रोमावली ऋजु, और सूक्ष्म है, वह स्त्री सुखकी क्रीड़ाभूमि हैं। स्त्रियोंकी रोमावली, कपिलवर्ण, कुटिल, स्थूल और विच्छिन्न है, वह चौर्य्य, वैधव्य, दौर्भाग्यकी सूचना देती हैं। जिनका हृदय रोमहीन है, सम और निम्नत्ववर्ज्जित है, वह ऐश्वर्य्यवती पतिप्रेमभागिनी हैं, वह विधवा नहीं होतीं। विस्तीर्णहृदया रमणी निर्दया और पुंश्चली होती हैं। जिन स्त्रीके हृदयमें रोम रहता है, वह निश्चय पतिघातिनी होती हैं। अष्टादश अङ्गुलिपरिमित, पीवर और उन्नत वक्षःस्थल ही सुखसूचक और उनका रोमश, विषम और पृथु होनेसे दुःखसूचक होता है। रमणियोंका घन, वृत्त, दृढ़, पीन और सम स्तनद्वय ही प्रशस्त हैं। स्थूलाग्र विरल और शुष्क स्तनद्वय दुःखसूचक हैं। जिनका दक्षिण स्तन उन्नत होता है, वह पुत्रवती और स्त्रियोंमें श्रेष्ठा होती हैं और जिनका बांया स्तन उन्नत होता है, वह सौभाग्यसुन्दरी कन्या प्रसव करती हैं। स्तनद्वय घटीयन्त्रस्थ घटीतुल्य होनेसे दुःशीलताका सूचक है। पीवरास्य सान्तराल और स्थूलोपान्त स्तनद्वय शुभसूचक नहीं हैं। जिनका स्तनमूल स्थूल है, क्रमशः कृश और अग्रभाग तीक्ष्ण है, वह नारी पहले सुखभागिनी हो, फिर अतिशय दुःख भोग करती हैं। वर्त्तुल श्यामवर्ण और स्थूलवर्ण चुचुकद्वय ही प्रशस्त हैं अन्तर्म्मग्न, दीर्घ और कृश चुचुकद्वय क्लेशके सूचक हैं। जिस नारीके जत्रुद्वय पीवर हैं, वह बहुतर धन-धान्यवती होती और जिनका जत्रु, श्लस्तास्थि, विषम और निम्न है, वह दुःखिनी होती हैं; अबद्ध, अनत, अदीर्घ और अकृश स्कन्धद्वय, शुभकर होते हैं और वक्र, स्थूल और रोमयुक्त स्कन्धद्वय वैधव्य या दासीत्वके सूचक हैं। निगूढ़सन्धि

स्कन्धाग्र और सुसंहत स्कन्धद्वय और समुन्नताग्र स्कन्धद्वय वैधव्य और निर्म्मांस स्कन्धद्वय अतिशय दुःख प्रदान करते हैं। सूक्ष्मरोम-विशिष्ट, तुङ्ग, स्निग्ध और मांसल कक्ष-द्वय प्रशस्त हैं। गम्भीर, शिराल खेदमे-दुर कक्षद्वय प्रशस्त नहीं हैं। रमणि-योंका गूढ़ास्थि गूढ़ग्रन्थि, कोमल, शिरा-हीन, और सरल बाहुद्वय प्रशस्त हैं। स्थूलरोमयुक्त बाहुद्वय वैधव्यके सूचक और ह्रस्व बाहुद्वय दुर्भाग्यके सूचक होते हैं। दृश्यमान शिरायुक्त नारियोंके बाहु-द्वय, बहुत क्लेशके सूचक हैं। अङ्गुष्ठ और सब उंगली मिलाकर सामने आकु-ञ्चित करनेसे जिनके हस्तयुगल कमलकी तरह हो जायं, उन मृगाक्षीको बहुत सुख भोग मिलता है। कोमल मध्योन्नत, रक्तावर्ण अरन्ध्र, सुश्री और प्रशस्त स्वल्परे-खायुक्त करतलद्वय प्रशस्त हैं। बहुरेखा-युक्त करतल वैधव्यके सूचक हैं। रेखाहीन करतल दारिद्र्यके सूचक हैं। शिरायुक्त करतलविशिष्टा नारी भिक्षुकी होती हैं। रोमहीन, शिराहीन और समुन्नत करपृष्ठ शुभसूचक हैं। शिरायुक्त, रोमयुक्त और निर्म्मांस करपृष्ठ वैधव्यका सूचक है। रक्त-वर्ण, व्यक्त, गभीर, स्निग्ध, वर्त्तुल और पूर्ण कररेखा रमणीके शुभभाग्यके सूचक हैं। करतलमें मत्स्यरेखा रहनेसे रमणी सौभाग्यवती होती हैं। स्वस्तिक-रेखा रहनेसे धनसम्पन्ना होतीं और पद्माकाररेखा रहनेसे राजपत्नी और राजमाता होती हैं। स्त्रियोंके करतलमें चक्रावर्त्त रेखा, प्रदक्षिण नन्द्यावर्त्तरेखा, शङ्खरेखा, आतपत्ररेखा और कमठाकार रेखा राजमातृत्वका सूचक है। जिनके हाथमें तुलामानाकार रेखा-द्वय होंगी, वह वणिककी पत्नी होती हैं। जिन स्त्रियोंके वामकरमें गज, बाजी, वृष, प्रासाद और वज्राकार रेखा है, वह तीर्थ-पर्य्यटक पुत्र प्रसव करती हैं। जिनके हाथमें गाड़ी या युगकाष्ठाकृति रेखा है, वह कृषककी पत्नी होती हैं। जिनके हाथमें चामर अङ्कुश और धनुरेखा रहती है, वह निश्चय राजपत्नी होती हैं। जिस स्त्रीके अङ्गुष्ठमूलसे निकलकर एक रेखा कनिष्ठाके मूल पर्य्यन्त स्पर्श करे, वह स्त्री पतिघातिनी होती हैं; अतएव सुधी व्यक्ति दूर हीसे उसे परित्याग करेंगे। जिनके हाथमें त्रिशूल, असि, गदा, शक्ति और दुन्दुभिकी तरह रेखा हो, वह रमणी, दान द्वारा पृथिवीमें कीर्त्तिमती होती हैं। करतलस्थित कङ्क, शृगाल, भेक, वृक, वृश्चिक, सर्प, गर्दभ, उष्ट्र और बिड़ालाकृति रेखा स्त्रियोंका दुःखसूचक है। सरल, वृत्त, वृत्तनख और कोमल अङ्गुष्ठ शुभसूचक है, उत्तम पर्व्वयुक्त, दीर्घ, वृत्त और क्रमशः कृश उंगलियां शुभफलकी सूचक हैं। चपटा, सङ्कुचित, रूक्ष और पृष्ठमें रोमयुक्त अङ्गुष्ठ अशुभसूचक है। अतिशय ह्रस्व, कृश, वक्र और विरल उंगलियां रोगसूचक

हैं। बहुपर्व्वयुक्त उंगलियां दुःखकी सूचक हैं। रक्तवर्णाग्रिख और तुङ्ग नख-समूह, रमणियोंके शुभसूचक हैं, निम्न-विवर्ण शुक्तिसदृश और पीतवर्ण नखसमूह, दरिद्रताके सूचक हैं। जिन स्त्रियोंके नखसमूहमें श्वेतवर्ण विन्दु हों, वह प्रायः स्वैरिणी होती हैं, ऐसा नाखुन रहनेसे पुरुषगण भी दुःखी रहते हैं। अन्तर्नि-मग्न और मांसल पृष्ठका वंशदण्ड शुभसूचक है। रोमयुक्त पृष्ठ वैधव्यसूचक हैं। भुग्न, विनत और शिरायुक्त पृष्ठदेश दुःख सूचक है। सरल, समांस और समुन्नत कृका-टिका शुभसूचक होती है। शुष्क, शिरा-युक्त, रोमाढ्य, विशाल और कुटिल कृका-टिका अशुभसूचक है। मांसल वर्त्तुल और चतुरङ्गुलि परिमित कण्ठदेश प्रशस्त है। रेखात्रयाङ्किता, अव्यक्तास्थि और सुसंहत ग्रीवा ही प्रशस्त है। मांसहीन, चिपटा, दीर्घ और सङ्कुचित ग्रीवा अशुभ-सूचक है। जिनकी ग्रीवा अतिशय स्थूल होती, वह विधवा होती हैं; जिनकी ग्रीवा वक्र है, वह किङ्करी होती हैं; जिनकी ग्रीवा चपटी होती है, वह बन्ध्या होती और जिनकी ग्रीवा ह्रस्व है, वह अपुत्रक होती हैं। वृत्त, पीन, सकोमल और दो अङ्गुल परिमित चिबुक प्रशस्त है। जिन रमणीका स्थूल, द्विधाविभक्त, आयत और रोमयुक्त चिबुक है, उनको ग्रहण न करेंगे। चिबुकसे लगा हुआ और सुघन हनू शुभसूचक है। वक्र, स्थूल, कृश, ह्रस्व और रोमश हनू शुभसूचक नहीं। वृत्त, पीन और समुन्नत कपोलद्वय शुभ-सूचक हैं। रोमयुक्त, परुष, निम्न और निर्मांस कपोलद्वय अशुभकर हैं, अतएव अग्राह्य हैं। सम, समांस, सुस्निग्ध, सुगन्ध-युक्त, वर्त्तुल और पितृवदनानुकारी वदन, कन्या, धन्या रमणियोंमें हैं। पाटलवर्ण, वर्त्तुल, स्निग्ध और मध्यस्थलमें रेखा विभूषित अधर, भूपतिपत्नीत्वका सूचक है। कृश, प्रलम्ब, स्फुटित और रूक्ष अधर दुर्भाग्यका सूचक है। जिन स्त्रियोंका निम्नउष्ठ श्याव और स्थूल है; वह विधवा और कलहकारिणी होती हैं। वरवर्णि-नीका उत्तरोष्ठ मसृण, बीचमें कुछ उन्नत और रोमहीन होनेसे शोभनभोगप्रद होती हैं और इसके विपरीत होनेसे विपरीत फल मिलता है। गोदुग्धकी तरह श्वेत-वर्ण, स्निग्ध, द्वात्रिंशत् परिमित, नीचे ऊपर समभाव अवस्थित और अल्प उन्नत दन्तसमूह शुभसूचक हैं, पीतवर्ण, श्याम, स्थूल, दीर्घ द्विपंक्ति, शुक्त्याकार और विरल दन्तसमूह दुःख और दुर्भाग्यके सूचक हैं। निम्नपंक्तिमें अधिक दांत रहनेसे वह निश्चय मातृनाशिनी होती हैं; निकट दन्त होनेसे, पतिहीना और दन्त-समूह विरल होनेसे नारी कुलटा होती हैं। ऊपरका भाग रक्तवर्ण, नीचेका असितवर्ण और कोमल जिह्वा होनेसे

अभीष्ट मिष्टद्रव्य भोग करती हैं, मध्यस्थलमें सङ्कीर्ण और परोभागसे विस्तीर्ण जिह्वा दुःखका सूचक है। जिनकी जिह्वा शुक्लवर्ण है, उनकी मृत्यु जलमें होती है; जिनकी जिह्वा श्यामवर्ण है, वह कलहप्रिय होती हैं; जिनकी जिह्वा मांसल है, वह दरिद्र होती हैं; जिनकी जिह्वा लम्बी है, वह अभक्ष्य भक्षण करती हैं और जिनकी रसना विशाल है, वह अत्यन्त प्रमादभागिनी होती हैं। स्निग्ध, कोकनदतुल्य और कोमलतालु प्रशस्त है। तालुकी सितवर्ण होनेसे विधवा, पीतवर्ण होनेसे प्रव्रजिता, कृष्णवर्ण होनेसे अपत्यवियोग-पीड़िता और रूक्ष होनेसे बहुकुटुम्बिनी होती हैं। अस्थूल, सुवृत्त, क्रमतीक्ष्ण, सुलोहित और अप्रलम्ब कण्ठघण्टी शुभसूचक है; स्थूल और कृष्णवर्ण कण्ठघण्टी दुःखसूचक है। हंसनेके समय जिनके दांत बाहर न निकलें, गण्डस्थल कुछ प्रफुल्ल हो उठे और नयनद्वय बन्द न हों, उनका हंसना शुभसूचक है। समवृत्त और सम्पुट, स्वल्पछिद्रविशिष्ट नासिका शुभसूचक है। स्थूलाग्र, मध्यनम्र और समुन्नत नासिका प्रशस्त नहीं। आकुञ्चित और अरुणवर्ण नासिकाग्र वैधव्य-क्लेशका सूचक है। नासिका चपटी और रूक्ष होनेसे परप्रेष्या होती हैं। जिनकी नासिका दीर्घ है, वह कलहप्रिया होती है। जिन रमणीके चुत दीर्घ और तीन चार एकत्र हों, वह दीर्घायु होती हैं। प्रान्तभाग रक्तवर्ण, कृष्णवर्ण, तारकायुक्त, गोदुग्धकी तरह सफेद, सुस्निग्ध और कृष्ण पक्ष्मयुक्त लोचनद्वय शुभकर होते हैं। जो उन्नतनयना हैं, वह स्वल्पायु होती हैं। वृत्तनयना रमणी कुलटा होती हैं। जो मेषाक्षी, महिषाक्षी और केकराक्षी हैं, वह दुःभागिनी होती हैं। जिनके नयन गजकी तरह पिङ्गलवर्ण हों, वह अतिशय कामुकी होती हैं। पारावताक्षी नारी दुःशीला होती हैं; रक्ताक्षी स्त्री पतिनाशिनी होती हैं; कोटराक्षी नारी अतिदुष्टा होती हैं; गजनेत्रा रमणी शोभना नहीं होतीं। जिनकी बड़ें आंख फूटी हो, वह पुंश्चली और जिनकी दाहनी आंख फूटी हो, वह बन्ध्या होती हैं। मधुर-पिङ्गलवतनयना रमणी धनधान्यशालिनी होती हैं। सघन, स्निग्ध, कृष्णवर्ण सूक्ष्म पक्ष्मावली सौभाग्यसूचक है। कपिलवर्ण, विरल और स्थूल पक्ष्मावली होनेसे, नारी, निन्दनीय होती हैं। सुवर्त्तुल स्निग्ध, कृष्णवर्ण, अमिलित, कोमल-रोमयुक्त और कार्मुकाकृति भ्रूद्वय ही प्रशस्त हैं। खर रोमयुक्त, विकीर्ण, सरल, मिलित, दीर्घ रोमविशिष्ट और पिङ्गलवर्ण भ्रूद्वय अमङ्गलसूचक हैं। लम्बवान शुभावर्त्त कर्णद्वय सुखकर और शुभसूचक हैं। शष्कुलीवर्जित, शिरायुक्त, कुटिल

और कृश कर्णद्वय निन्दनीय हैं। शिराविहीन निर्लोम, अर्द्धचन्द्राकृति, अनिम्न और अङ्गुलित्रय परिमित भालदेश नारीका सौभाग्य और आरोग्यका कारण है। स्वस्तिकरेखासम्पन्न ललाट राज्यसम्पत्सूचक है। जिनका मस्तक लम्बा है, वह निश्चय देवरघातिनी होती हैं। रोमशशिराल और उन्नत मस्तक होनेसे रोगिणी जानना चाहिये। सरल सीमन्तदेश प्रशस्त है। समुन्नत करिकुम्भाकार और सुवृत्त मौलि सौभाग्य और ऐश्वर्य्यका सूचक है। जिनका मस्तक स्थूल है, वह बिधवा होती हैं; जिनका मस्तक दीर्घ है, वह वेश्या और जिनका मस्तक विशाल है, वह दुर्भागा होती है। अलिकुलकी तरह कान्तिसम्पन्न सूक्ष्म, स्निग्ध, कोमल, किञ्चिदाकुञ्चिताग्र कुटिलकुन्तल अति शुभसूचक हैं। परैष स्फुटिताग्र, विरल, पिङ्गलवर्ण लघु और रुच केशसमूह दुःख, दारिद्र्य और बन्धके सूचक हैं। स्त्रियोंके भ्रूद्वयके बीच या ललाटमें मशकरेखा हो, तो वह राज्यसूचक है। रमणीके वाम कपालमें शोणवर्ण मशकरेखा बहुतर मिष्टान्नभोगका सूचक है। रमणीके हृदयमें तिलक या पद्म, वज्र, अङ्कुश, ध्वज या त्रिशूलादि चिह्न सौभाग्यसूचक हैं। जिनके दक्षिणस्तनमें शोणवर्ण तिलक या पद्मादि-चिह्न हों, वह चार कन्या और तीन पुत्र प्रसव करेंगी। जिनके वामस्तनमें तिलक या पद्मादि-चिह्न हों, वह पहले एक पुत्र प्रसवकर विधवा होंगी, जिनके गुह्यके दक्षिण भागमें तिलक हो, वह राजपत्नी होतीं या राजमाता होती हैं। राजमहिषी होके नासिकाके अगले भागमें रक्तवर्ण मशकचिह्न दिखाई देता है। नासिकाके अग्रभागमें कृष्णवर्ण मशक-चिह्न पतिविनाश और असतीत्वका सूचक है। नाभिके निम्नमें तिलक, मशक और पद्मादि चिह्न शुभसूचक हैं। गुल्फदेशमें मशक या तिलक-चिह्न दरिद्रताका सूचक है। कर, कर्ण, कपोल अथवा वामकण्ठमें तिलक, मशक और पद्मादि चिह्नमें यदि कोई भी चिह्न हो, तो नारी प्रथमगर्भमें पुत्र प्रसव करेंगी। जिनके ललाटमें विधिलिखित त्रिशूल चक्र हो, वह बहुसहस्र स्त्रियोंपर आधिपत्य पाती हैं। जो स्त्री निद्रावस्थामें दांतसे कट कट शब्द करें या प्रलाप करें, सुलक्षणा होनेपर भी उनसे विवाह करना उचित नहीं। हाथके रोमसमूह प्रदक्षिणावर्त्त हों, तो धर्मसूचक हैं; और वामावर्त्त होनेसे अशुभसूचक हैं। नाभि कर्ण और वक्षःस्थलका दक्षिणावर्त्त रोम शुभसूचक हैं। पृष्ठवंशके दक्षिणमें दक्षिणावर्त्त रोम सुखसूचक हैं। पृष्ठके मध्यस्थलमें नाभिकी तरह वर्त्तुलाकार हो, तो रमणी दीर्घायुः और पुत्रवती होती हैं। राजमहिषीके हो स्त्री-अङ्गके ऊपर दक्षिणावर्त्त रोम होता है। शकटाकृति दक्षिणावर्त्त हो, तो बहु-

अपत्य और बहुत सुख भी होता है। कटिके रोमावर्त्त यदि गुह्य पर्य्यन्त विस्तृत हों, तो पति और अपत्य नाश होते हैं। पृष्ठके रोमावर्त्तद्वय यदि उदर पर्य्यन्त विस्तृत हो, तो वह शुभकर नहीं। वह एक आवर्त्त नारीको पतिघातिनी बनाता है, दूसरा उन्हें पुंश्चली करता है। कण्ठस्थित रोम दक्षिणावर्त्त होनेसे दुःख और वैधव्यके सूचक हैं। जिनके सीमन्तमें अथवा ललाटमें दक्षिणावर्त्त हो, उन्हें प्रयत्न सहित दूर हीसे परित्याग करना उचित है। जिनकी कृकाटिकाके मध्यस्थलमें वामावर्त्त या दक्षिणावर्त्त रोमसमूह हों, वह वर्षके भीतर ही पतिको विनष्ट करती हैं। मस्तकमें एक वामभागमें दो वामावर्त्त द्वय दिनमें ही पतिके विनाशके सूचक हैं। अतएव सुबुद्धि-व्यक्ति दूरसे ही उन आवर्त्तवती नारीको परित्याग करेंगे। जिनकी कटिमें आवर्त्त हो, वह कुलटा होती हैं; जिनकी नाभिमें आवर्त्तक हो, वह पतिव्रता होतीं और जिनकी पीठमें हो, वह पतिनाशिनी अथवा कुलटा होती हैं। स्कन्दने कहा, जो स्त्री सुलक्षणा होकर भी दुःशीला हों, वह कुलक्षणाकी शिरोमणि हैं; जो स्त्री अलक्षणा होकर भी साध्वी हों, वह सब सुलक्षणाओंकी आश्रय हैं। विप्रवरको अनुग्रहसे, सुलक्षणाक्रान्ता, सुचरित्रा, अपनी वशवर्त्तिनी और पतिदेवता स्त्री गृहस्थाश्रममें प्राप्त जाती हैं। पूर्व्व जन्ममें जिन्होंने कुमारीगणको विविध अलङ्कारसे अलङ्कृत किया है वही सब रमणी इस जन्ममें सुरूपा हुई हैं। जिन्होंने पूर्व्वजन्ममें किसी पुण्यतीर्थमें स्नान या देहत्याग किया है, वही इस जन्ममें लावण्यमयी और सुलक्षणा हैं। जिन्होंने पूर्व्वजन्ममें जगन्माता भवानीकी पूजा की है, वही सुन्दर चरित्रयुक्ता हैं और पति उनके वशवर्त्ती हैं। जिनके पति अनुकूल हैं, उन सब सुशीला हरिणनयना रमणियोंके लिये यहां ही स्वर्ग और मुक्तिसुख है; क्योंकि, सुलक्षणाओंका फल ही यही है। प्रमदागण अपने सुचरित्र और सुलक्षणसमूहके फलसे स्वल्पायु स्वामीको भी दीर्घ-जीवीकर आनन्दभाजन करती हैं। अतएव विचक्षण व्यक्तिगण पहले लक्षणोंकी परीक्षाकर, दुर्लक्षणा परित्यागकर, सुलक्षणा स्त्रीसे ही विवाह करेंगे। हे कुम्भयोने! मैंने गृहस्थोंके सुखकेलिये स्त्रीलक्षण-समूह कहा; अब विवाह समूह कहता हूं सुनो।

सप्तत्रिंश अध्याय समाप्त॥ ३७॥

अष्टात्रिंश अध्याय।

गृहि-सदाचार।

स्कन्दने कहा,—हे अगस्त्य! ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व्व, राक्षस, और पैशाच यह आठ प्रकारके विवाह हैं। उनमें वरको बुलाकर शास्त्रद्वारा कन्या

प्रदान करनेको ब्राह्म विवाह कहते हैं. इस विवाहसे विवाहित न्याका गर्भजात पुत्र एकविंशति पुरुषका उ ार करता है। यज्ञकर्म्ममें रत ऋत्विककी कन्या दान करनेको दैव विवाह कहते हैं; उसका गर्भजात सन्तान चतुर्द्दश पुरुषको पवित्र करता है। वरसे गो-मिथुन लेकर कन्या देनेको आर्ष विवाह कहते हैं; उससे उत्पन्न पुत्र छः पुरुषका उद्धार करता है। "तुम दोनो गार्हस्थ्य धर्म्म पालन करो" कहकर जो वरको कन्या देते हैं, उसे प्राजापत्य कहते हैं; इस कन्याका तनय छः पुरुष पर्य्यन्त पूत करता है। यह चार तरहका विवाह ब्राह्मणोंके धर्म्मानुगत है। धन लेकर बेचनेसे आसुर, परस्परमें अनुरागसे गान्धर्व्व, बलपूर्व्वक कन्याहरण करनेको राक्षस—यह विवाह सज्जन निन्दित और किसी छलसे कन्या हरण करनेको पैशाच विवाह कहते हैं—यह गर्हित कथित है। इनमें गान्धर्व्व, आसुर और राक्षस यह तीन विवाह क्षत्रिय और वैश्यको प्रायशः है; किन्तु अष्टम पैशाच विवाह अति पापमय है, पापियोंमें ही प्रचलित रह सकता है। सजातीय विवाह कालमें पाणिग्रहण पूर्व्वक विवाह करेंगे; किन्तु क्षत्रिय कन्या शर, वैश्यकन्या प्रतोद और शूद्र कन्या वसनाञ्चल ग्रहण करेंगी, यह असवर्णाविषय स्थलमें ही उक्त हुआ और वही दिखाई देता है। बराबर वर्णोके विवाह स्थलमें सब लोग पाणिग्रहण करेंगी, ऐसा जानना चाहिये। धर्म्मसङ्गत विवाहसे धर्म्मिष्ट शतवर्ष जीवी सन्तान होता और अधर्म्य विवाहसे अधार्म्मिक, हतभाग्य, निर्द्धन, अल्पजीवी सन्तान होता है। ऋतुकालमें पत्नीगमन ही गृहस्थका परम धर्म्म अथवा नारियोंको, जो नर है, उन्हें स्मरणकर कामनानुसार गमन करना भी धर्म्ममें गण्य है। दिनमें स्त्री गमन पुरुषको परमायुःक्षयकर है; अतएव मनीषासम्पन्न व्यक्ति दिवाभाग और समस्त पर्व्वदिन यत्नपूर्व्वक स्त्री त्याग करेंगी। स्त्रियोंका ऋतुकाल षोड़शरात्रि है; उसमें पहले चार रात्रि गर्हित है; युग्म रात्रिके गमनसे पुत्र और अयुग्म रात्रिके गमनसे कन्या उत्पन्न होती है। दुःस्थचन्द्र, मघा और मूला नक्षत्र त्यागकर, विशेषतः पुंक्षेत्रमें, शुचि हो पत्नीसे उपगत होंगी, ऐसा करनेसे पुरुषार्थसाधक शुचि पुत्र उत्पन्न होता है। आर्ष विवाह, जिसमें गोमिथुन दानकी बात कही गई है, वह प्रशस्त नहीं; कारण कन्या सम्बन्धमें यत्किञ्चित शुल्कसे भी कन्याविक्रयजनित पाप होता है। आत्मविक्रयीको प्रलयकालतक विट्कृमिभोजन नामक निरयमें वास करना पड़ता है; अतएव पिता कन्याके किञ्चित्मात्र धनसे भी जीविकानिर्व्वाह न करेंगी। पित्रादि बान्धवगणके मोहवश स्त्रीधन उपजीविका करनेसे, उन्हें केवल नरक

गामी हो नहीं होना पड़ता उन लोगोंके पूर्व्वपुरुषगण भी नरकमें जाते हैं। जहां पति, पत्नीसे सन्तुष्ट और पत्नी, पतिसे सन्तुष्ट हैं, वहां साक्षात् लक्ष्मी और विष्णु सन्तुष्टचित्त हो वास करते हैं। वाणिज्य, राज्यसेवा, वेदपाठ वर्ज्जन कुविवाह और कर्म्मलोप यह कई एक कुलके अधोपतनके कारण हैं। गृहस्थ प्रतिदिन वैवाहिक वह्निसे गृहकर्म्म पञ्चयज्ञ और दैनन्दिन पाकक्रिया समाधा करेंगे। उदूखल, मूषल, पेषणी (सिललोढ़ा), चुल्ली जलकुम्भ और सम्मार्ज्जनी यह पांच गृहस्थोंका दैनिक सूना (जीवहिंसाका स्थान) है। इन पांचो सूना दोष निराकरणके लिये गृहस्थका श्रेयस्कर वक्ष्यमाण पञ्चयज्ञ निर्द्दिष्ट है। अध्ययन और अध्यापन, ब्रह्मयज्ञ है; अन्नादि द्वारा पितृतर्पणका नाम पितृयज्ञ और होमका नाम देवयज्ञ है, वैश्वदेव नामक भूतयज्ञ और अतिथि सेवाका नाम नृयज्ञ है। गृहस्थ पितरोंकी प्रीतिके लिये अन्न, जल, दुग्ध, फल और मूल द्वारा प्रतिदिन श्राद्ध करेंगे। सत्पात्रको गोदान करनेसे जो पुण्य होता है, भिक्षुकका यथाविधि सम्मानकर भिक्षा देनेसे भी वही फललाभ होता है। तपस्या और विद्यारूप इन्धनसे प्रदीप्त ब्राह्मणके मुखरूप अनलसे हव्यकव्यमें आहुति देनेसे, दुस्तर पापसमुद्र और विघ्नराशिसे गृहस्थ उद्धार पाते हैं। अतिथि सत्कृत न होकर जिनके घरसे हताशभावसे प्रतिगमन करते हैं, वह तत्क्षणात् आजन्मसञ्चित पुण्य वहिर्भूत होते हैं। अतएव अतिथिके सन्तोषके लिये प्रियवाक्य, शयनार्थ तृण, विश्राम भूमि और पादप्रक्षालनार्थ अन्ततः जल देना उचित है। जो गृहस्थ आतिथ्य लोभसे परान्न भोजन करते हैं, वह मरकर उसी अन्नदाताके यहां पशुरूपमें जन्म पाते हैं, और अन्नदाता उसका पुण्य पाते हैं। अतिथि सूर्य्य अस्तमितकर घरसे आनेपर भी उनका यत्नपूर्व्वक सत्कार करेंगे अन्यथा असत्कृत हो और जगह जानेपर गृहस्थको पापराशि प्रदान करते हैं। इस जगतमें अतिथिका अवशिष्ट भोजन करनेसे दीर्घायु और धनवान् होते हैं और अतिथिको प्रत्याख्यानकर अन्न भोजन करनेसे गृहस्थ पापग्रस्त होते हैं। वैश्वदेव बलिके उपरान्त और सूर्य्यास्त कालमें आनेवालेको अतिथि कहते हैं; इसके पहले आनेवाले किसी स्थानमें दृष्टपूर्व्व व्यक्ति अतिथिमें गण्य नहीं हैं। ब्राह्मणने हाथमें बलिपात्र ग्रहण किया है, इस अवसरमें यदि दूसरा अतिथि मिले, तो उसका वह बलिप्रदानकर यथाशक्ति अन्नपाक करेंगे। नवविवाहितास्त्री, पुत्र या दुहिता, बालक, गर्भिणी और रुग्न व्यक्तिको अतिथिके पहले भोजन करावेंगे; इस विषयमें विचार न करें। गृहस्थ पितरोंको, देवता और मनुष्यको अन्न दे अवशिष्ट भोजन करनेसे अ-

स्रुत भोजन करते और जो उदरपरायण अपने लिये पाक बना भोजन करते हैं, वह केवल पाप भोजन करते हैं। गृहस्थ व्यक्ति मध्याह्नकालीन वैश्वदेव बलि स्वयं करेंगे और उनकी पत्नी सायंकालकी सिद्धअन्न अमन्त्र बलि देगी। यही सायंकालीन वैश्वदेव-बलि कहा जाता है। यह सायंकाल और प्रातःकालमें विहित है। ब्राह्मणके वेदाध्ययन करनेपर भी यदि वैश्वदेव अतिथिसंस्कार विवर्ज्जित हों, तो उन्हें वृषल कहना चाहिये। जो वैश्वदेवका बलि न देकर भोजन करते हैं, वह इह लोकसे विपन्न होते और देहान्तपर काकयोनिको प्राप्त होते हैं। ब्राह्मण अनलस भावसे प्रतिदिन वेदोक्त अपना कर्म्म करेंगे; यथाशक्ति करनेसे वह स्वर्गगामी होते हैं। षष्ठी, अष्टमी, चतुर्द्दशी और पञ्चदशी तिथिमें तैल, मांस, मैथुन, और चौरकर्म्ममें पाप नियत आश्रय करते हैं। राहुग्रस्त, उदय और अस्तगमनोन्मुख, नभोमध्यगत और जलमें प्रतिबिम्बि सूर्य्यको न देखेंगे। जलमें आत्मरूप न देखेंगे, वारिवर्षण कालमें दौड़कर न चलेंगे, वत्सबन्धन रज्जु लङ्घन न करेंगे और नग्नावस्थामें जलमें प्रवेश न करेंगे। देवगृह, विप्र, धेनु, मधु उद्धृत मृत्तिका, घृत, जन्मवृद्ध, वयोवृद्ध, विद्यावृद्ध, तपस्वी अश्वत्थवृक्ष, चैत्यवृक्ष गुरु, जलपूर्ण कुम्भ सिद्धान्त हैं। दधि और सर्षप इन्हें चलनेके समय दाहने करेंगे। रजोदर्शनकालमें तीन दिन पत्नीसे उपगत न होंगे। पत्नीके साथ एक पात्रमें भोजन न करेंगे और एकवस्त्रसे या एक उत्कट आसनपर बैठकर आहार न करेंगे। तेजोलाभकी इच्छा रखनेसे द्विजश्रेष्ठ पत्नीके भोजन करनेके समय उसे न देखेंगे। दीर्घजीवनके प्रार्थी होकर देवता और पितृगणको निवेदन न करके कभी नया अन्न भोजन न करेंगे और पशुयाग न करके मांसभक्षण न करें। गोष्ठ वल्मीक, भस्म और जिसमें प्राणी विद्यमान हैं, ऐसे गर्त्तमें, या चलते चलते खड़े होकर गो, ब्राह्मण, सूर्य्य, वायु, अग्नि, चन्द्र जल और गुरुजनको देखते हुए मलमूत्र त्याग न करेंगे। काष्ठ, लोष्ट, तृण और पत्र प्रभृति द्वारा भूमि आवृत कर वस्त्रसे मस्तक आच्छादनकर मौनावलम्बन हो विण्मूत्र परित्याग करेंगे। रात और दिनमें अन्धकारस्थलमें भयस्थानमें और प्राणबाध समयमें जिस तरफ चाहें मुंहकर मलमूत्र त्याग सकते हैं। मुख द्वारा अग्निको न फूंकेंगे, नग्नावस्थामें नारीको न देखेंगे, अग्निसे पदद्वय उत्तप्त न करेंगे और अमेध्यवस्तु निक्षेप न करेंगे। प्राणिहिंसा, द्विसन्ध्य भोजन और सन्ध्याकालमें वा पश्चिमास्य और उत्तरास्य हो शयन न करेंगे। दीर्घजीवनकी कामना रखकर जलमें विण्मूत्र और निष्ठीवन त्याग

न करेंगी। वत्सके दुग्धपानके समय बाधा न देंगी और इन्द्रधनु किसीको न दिखावेंगी। निर्ज्जन घरमें अकेले न सोवेंगी, निद्रित व्यक्तिको, न जगावेंगी। अकेले राह न चलेंगी और अञ्जलिसे पानी न पियेंगी। जो व्यक्ति स्वयं श्राद्धकर अज्ञानवश दूसरेके श्राद्धमें भोजन करते हैं, वह पापभागी होते हैं और दाता, श्राद्धफल लाभसे वञ्चित होते हैं। दिवाभागमें उद्धृतसार दुग्ध प्रभृति और रात्रिकालमें दधिभक्षण निषिद्ध है। ऋतुमतीके साथ एकत्र वास करना उचित नहीं और रातको आकण्ठ भोजन अवैध है। नृत्यगीतवाद्यसे आसक्त न होंगी और कांसपात्रमें पैर न धोयेंगी, भग्नपात्रमें भोजन न करेंगी और अस्थि प्रभृति अशुचि पदार्थ अपवित्रस्थानमें अवस्थान न करेंगी। गोपृष्ठपर आरूढ़, चिताधूम, नदीसन्तरण, नवोदित सूर्य्यकी रश्मि और दिवानिद्रा दीर्घजीवनेच्छु व्यक्तिको त्याग करना उचित है। स्नानके उपरान्त गात्रमार्ज्जना, पथमें शिखात्याग, मस्तक कम्पन, पाद द्वारा आसनाकर्षण, दन्त द्वारा नखलोमोत्पाटन और नख द्वारा नख और तृणच्छेदन करना कर्त्तव्य नहीं। शुभाकाङ्क्षी किसी काममें प्रवृत्त हो उसे कभी त्याग न करेंगी, अपने अथवा दूसरेके घर बेराह भीतर जाना निषिद्ध है, पणके सिवा अक्षक्रीड़ा न करेंगी और रोगी या अधार्म्मिकके साथ एकत्रमें उपवेशन न करेंगी, नग्नावस्थामें शयन और पाणितलमें बहुत अन्न लेकर क्रमशः भोजन करना विधेय नहीं। भीगी पैर करमुखमें भोजन करना कर्त्तव्य है; ऐसा करनेसे मनुष्य दीर्घजीवी होते हैं। भीगी पैरसे शयन उच्छिष्ट अवस्थामें इधर उधर जाना और शय्यातलस्थित हो अशन, पान और जप करना ब्राह्मणका कर्त्तव्य नहीं है। पादुका धारणकर या खड़े होकर आचमन और धाराजल पान करना उचित नहीं और सुखाभिलाषी व्यक्तिको रात्रिकालमें तिलोत्पन्न खाद्य भक्षण गर्हित है। मलमूत्र दर्शन, उच्छिष्टावस्थामें मस्तक स्पर्श और तुष, अङ्गार, भस्म, केश और मृण्मयपात्रमें भग्नखण्डके ऊपर चढ़ना अवैध है। पतितके साथ वास करनेसे अपनेको भी पतित होना पड़ता है; अतएव ऐसा न करेंगी। शूद्रको कभी वैदिकमन्त्र न सुनावेंगी, ऐसा करनेसे ब्राह्मणकी ब्राह्मण्यहानि और शूद्रकी धर्म्महानि होती है; शूद्रको धर्म्मका उपदेश न करेंगी; ऐसा करनेसे श्रेयोहानि होती है। कारण, द्विजशुश्रुषा ही शूद्रोंका, परमधर्म्म कहा गया है। मस्तककण्डूयन, मस्तकपर कराघात, क्रोशन और केशोलुञ्चन शुभदायक नहीं। लोभवश शास्त्रविरुद्धाचारी भूपालके प्रतिग्रह करनेसे ब्राह्मण सवंश तामिस्र प्रभृति एकविंशति नरकमें जाते हैं, अकालमें वि-

द्युदुर्गब्जिन, वर्षाकालमें दिवाभागमें पांशुवर्षण और रात्रिकालमें महा वायुध्वनि होनेसे अनध्याय कहा जाता है। उल्कापातमें, भूमिकम्पमें, दिग्दाहमें, धूमकेतूदयमें, सायं और प्रातः सन्ध्याके समय, शूद्रसन्निधानमें, राजाके सूतकाशौचमें, चन्द्र-सूर्य्य-ग्रहणमें, अष्टका, चतुर्द्दशी, अमावस्या, पूर्णिमा और प्रतिपद् तिथिमें, श्राद्धीय पक्वान्न भोजनमें, हस्ती और ऊंटके बीचसे जानेमें, शृगाल गर्द्दभ ऊंटके निनादमें, रोदनध्वनि सुननेसे, बहुत आदमियोंके समागमसे, उपाकर्म्म और उत्सर्ग नामक कर्म्मसे, नौकामें, पथमें, वृक्षके ऊपर, जलमें अरण्यक नामक वैदिकदिशाके अध्ययनके उपरान्त और बाण या सामवेदका निनाद सुनकर अनध्याय समझेंगे। इन सब अनध्याय समयमें ब्राह्मण कभी वेद और वेदाङ्गका अध्ययन न करेंगे। भेक, मार्ज्जार, कुक्कुर, सर्प और नकुलके गुरु और शिष्यमेंसे गमन करनेपर अध्ययनमें निवृत्त होंगे। चतुर्द्दशी अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा-तिथिको ब्रह्मचर्य्य अवलम्बन करेंगे। इस जगत्में परस्त्रीगमन जीवनहानिकर है, अतएव, उसे दूर होसे परिहार करें। पूर्व्वविभव गत हुआ है जानकर अपनेको अवज्ञा करना उचित नहीं; कारण, उद्योगी पुरुषके पक्षमें विद्या या सम्पद् कुछ भी दुर्लभ नहीं है। हे कुम्भयोने! लोग सत्य और प्रिय वचन बोलेंगे, सत्य और अप्रिय न कहेंगे और मिथ्या तथा अप्रिय भी न बोलेंगे, इसीको धर्म्म जानेंगे। किसीके साथ साक्षात होनेपर भद्र (अच्छे) जैसी ही बात कहेंगे, लोगोंकी भलाईकी चिन्ता करेंगे, भद्रसंसर्ग करेंगे और अभद्रका सङ्ग कभी न करेंगे। बुद्धिमान् लोग रूपहीन, निर्द्धन और नीचकुलोद्भव व्यक्तिकी निन्दा न करेंगे और अपवित्र अवस्थामें चन्द्र, सूर्य्य या ग्रहण नक्षत्रादि न देखेंगे। वाक्यवेग, मानसिकरोग, लोभ, उत्कोच, द्युत, दौत्य और आर्त्तजनका द्रव्य दूर होसे परिहार करेंगे। उच्छिष्ट अवस्थामें पाणि द्वारा गो, ब्राह्मण और अग्निका स्पर्श कर्त्तव्य नहीं। अनातुर अवस्थामें अकारणसे निज इन्द्रिय भी स्पर्श न करेंगे। ब्राह्मण अहोरात्र श्रुतिजप, शौच और आचार सेवन और परायेकी अनिष्टबुद्धि न करनेसे जातिस्मर होते हैं। वृद्धगणको भक्तिके साथ प्रणाम करेंगे, अपना आसन छोड़ देंगे, आप नीचे बैठेंगे, गमनकालीन उनके अनुगामी होंगे। देवता, ब्राह्मण, वेद, नृपति, साधु, तपस्वी और पतिव्रता नारीकी निन्दा कभी न करेंगे। मनुष्यके स्तुतिवाक्यसे विरत रहेंगे, आत्मावमाननाको मनमें स्थान न देंगे, उपस्थित त्याग न करेंगे और परमार्थ उद्घाटनसे निवृत्त होंगी, अधर्म्म करनेसे पहले वृद्धि, शत्रुजय और सर्व्वतोभावसे अच्छा होता है सही, किन्तु परिणाममें, सवंश विनष्ट होते हैं। पराये जलाशयमें पांच-

बार मृतपिण्ड उद्धारकर स्नान करेंगे, नहीं तो जलाशय खोदनेवालेको दुष्कृतिका चतुर्थ भाग प्राप्त होता है। देश और काल विशेषमें श्रद्धापूर्व्वक सत्पात्रकी यथाविधि दान करनेसे अनन्तफल होता है। जो व्यक्ति भूमि दान करते हैं, वह राजचक्रवर्त्ती होते हैं। अन्न देनेसे इस लोकमें परलोकमें सुखी, जल दान करनेसे सदा सन्तुष्ट, रौप्य देनेसे सदा रूपवान्, दीप दान करनेसे निर्म्मलदृष्टि, गोदान करनेसे सूर्य्यलोकवासी, सुवर्ण देनेसे दीर्घजीवी, तिल दान करनेसे सत्पुत्रवान्, गृहदान करनेसे अत्युच्च सौधपति, वस्त्र देनेसे चन्द्रलोकगामी, अश्व देनेसे दिव्यविमानस्वामी, वृष दान करनेसे लक्ष्मीवान, शिबिका पर्य्यन्तक दान करनेसे शुभार्य्यावान, धान्य प्रदान करनेसे सर्व्वसमृद्धिशाली, अभय दान करनेसे ऐश्वर्य्यवान् और वेद दान करनेसे ब्रह्मलोकमें पूज्य होते हैं। वेददान और सर्व्वस्वदान दोनो बराबर है। जो व्यक्ति किसी उपायसे वेद दान कराते हैं, वह भी दाताके समान फल पाते हैं। जो श्रद्धापूर्व्वक प्रतिग्रह और दान करते हैं, वह दोनो ही स्वर्गीय पुरुष हैं। अश्रद्धासे दान और प्रतिग्रह करनेसे अधःपतित होते हैं। अनृतभाषणसे यज्ञ, गर्व्वसे तपस्या, कीर्त्तनसे दान और ब्राह्मण-निन्दासे आयु हानि प्राप्त होता है। गन्ध, पुष्प, कुश, शय्या, शाक, मांस, दुग्ध, दधि, मणि, मत्स्य, गृह और धान्य यह सब उपस्थित मात्रसे ग्रहण किया जा सकता है, मधु, उदक, फल, मूल, काष्ठ और अभयदक्षिणा यह सब भी अयाचित उपस्थित हो, तो निकृष्ट व्यक्तिसे भी ले सकते हैं। शूद्रोंमें दास, हज्जाम, गोपालनकारी, वंशका मित्र, कृषिकार्य्यकारी और आत्मसमर्पक. इनका पक्क अन्न भोजन विधिबोधित है। इस तरह मनुष्य, देव ऋषि और पितृऋणसे आत्ममोचनकर पुत्रको सब अर्पणकर वाणप्रस्थ अवलम्बन करेंगे। घरमें रहकर भी ध्यानका अभ्यास करेंगे अथवा काशी आश्रय करेंगे। सम्पूर्ण ज्ञानलाभसे या वाराणसी आश्रयसे मुक्ति हो सकती है। एक जन्ममें सम्पूर्ण ज्ञानलाभकी सम्भावना नहीं है, किन्तु काशीमें शरीर त्यागमात्रसे मुक्ति स्थिरकल्प है। आज, कल, परसों अथवा शताधिक वर्ष हो, देहका अवश्य ही पतन होगा; किन्तु यदि काशीमें हो, तो मुक्ति लाभ होती है। वह काशी सबकी लभ्य नहीं है, जो सदाचारी हैं, उन्हींको लभ्य है; अतएव विद्वान्‌लोग उस सदाचारको लङ्घन करनेके लिये हृदयमें स्थान न देंगे। स्कन्दकी ऐसी बात सुनकर अगस्त्यने कहा, हे षड़ानन! सदाचार प्राप्य उस काशीका माहात्म्य फिरसे कहिये, हे स्कन्द! मैं पूछता हूं, काशीमें कौन कौन लिङ्ग ज्ञानदायक हैं? काशीमें ही मेरी मति है, काशीमें ही मेरी रति है!

बिना काशीके मैं चित्रपुत्तलिकाकी तरह हूं, जागना नहीं, निद्रा नहीं, भोजन पान नहीं,—केवलमात्र "काशी" यही दो अक्षर-रसुधापान करके जीवन धारण करता हूं। अगस्त्यकी बात सुनकर स्कन्दने काशीमाहात्म्य कहना आरम्भ किया।

अष्टात्रिंश अध्याय समाप्त ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंश अध्याय।

अविमुक्तेश्वराविर्भाव।

स्कन्दने कहा, हे महात्मन् अगस्त्य! मुक्तिसम्पद्दायिनी कलुषनाशिनी काशीकी कथा सुनो। अहो, कैसी विचित्र है! जिसको निष्प्रपञ्च, निरात्मक, निर्विकल्प, निराकार, निरञ्जन, स्थूल, सूक्ष्म, परमब्रह्म कहते हैं, वह सर्व्वव्यापी होनेपर भी, इस क्षेत्रमें व्यापकर विराजमान हैं। वह क्या अन्यत्र जीवगणके संसारमोचनमें समर्थ नहीं हैं? ऐसा नहीं; तब जो इस स्थानमें ही स्थिर मुक्ति दो है, उसका कारण सुनो। दूसरी जगह वह परमब्रह्म भगवान् शिव महायोगने निष्काम महादान या महातपस्यामें मुक्ति दो है, किन्तु इस जगह बिना महायोगके बिना उस महादानके, बिना उस अति दीर्घ तपस्याके मुक्तिदान देते हैं। वह बहु विघ्नवा होनेसे भी काशीसे अन्तरित नहीं करते, यही महायोगमें गण्य है; तपोयोगका यही दूसरा कारण है। नियमपूर्व्वक सुभक्तिसहित, विश्वनाथके मस्तकपर जो पत्र, पुष्प, फल और जल चढ़ाया जाता है, वही इस जगह स्नानसे महादान है, विशुद्ध गङ्गाजलमें स्नानकर मुक्तिमण्डपमें क्षणकाल स्थिरभावसे उपवेशन किया जाय, वही इस यहांकी दीर्घ तपस्या है। काशीक्षेत्रमें भिक्षुकको सत्कारपूर्व्वक जो भिक्षा दी जाती है, तुलापुरुषदान उसकी सोलह कलाकी एक कलाके योग्य भी नहीं है। विश्वनाथका हृदयमें ध्यानकर क्षणकाल जो भगवानके दक्षिण भागमें नेत्र-निमीलन करते हैं, यही महायोग—सर्व्वयोगका प्रधान है। क्षुधा, ताप विदूरितकर और इन्द्रियचापल्य दमनकर काशीमें अवस्थान करना ही कठोर तपस्या है। और जगह प्रतिमासमें चान्द्रायणव्रत करनेसे जो फल होता है, यहां चतुर्द्दशी तिथिको नक्त-भोजनसे वही फललाभ होता है। अन्यत्र एक मास उपवाससे जो फल उपार्ज्जित होता, यहां श्रद्धापूर्व्वक एकाध उपवास करनेसे निश्चय ही वह फल लाभ होता है। अन्यत्र चातुर्म्मास्य व्रतसे जो महाफलका होना कहा गया है, इस काशीमें एकादशीके उपवाससे निःसंशय वही फल होगा। दूसरी जगह छः महीने अन्नत्याग करनेसे जो फल होता है, काशीमें एक शिवरात्रि उपवाससे निश्चय वही फल होता है। मानव अन्यत्र

व्रत अवलम्बनकर संवत्सर उपवाससे जैसे फललाभमें समर्थ होते हैं, काशीमें त्रिरात्र उपवाससे अविकल उसके सदृश फल होता है। हे मुने! अधिक क्या, प्रति मासमें कुशाग्रभागके जलपानसे अन्यत्र जो फल होता, काशीकी उत्तरवाहिणी गङ्गाका एक गण्डूष जलपान करनेसे ही वह फल होता है। काशीकी महिमा अनन्त है, वर्णन करनेमें कौन व्यक्ति समर्थ हैं? वहां भगवान् शिव मुमुर्षु-व्यक्तिके कानमें मन्त्र देते हैं। अहा! चणकाल कैसा अनिर्व्वचनीय मन्त्र देते हैं, जिसको सुनकर मानव मरकर भी अमरत्व लाभ करते हैं। आहा! स्मररिपु स्वयं शङ्कर, मन्दर पर्व्वतसे गमनकालमें काशीपुरी स्मरणकर फिर उसके लाभके लिये तुम्हारी ही तरह न सन्तप्त हुए थे? अगस्त्यने कहा, हे प्रभो! निदारुण देवगणने स्वकार्य्य उद्धारके लिये मेरा काशीत्याग कराया था, भगवान् हरने क्यों त्याग किया था? वह पिनाकधारी देव भी क्या मेरी तरह पराधीन हैं? फिर उन्होंने, निर्व्वाणरत्नराशि काशी किस लिये त्याग की, कहिये! स्कन्दने कहा, हे मुने! मित्रावरुण तनय! जैसे तुमने देवताओंके अनुरोधसे परोपकारके लिये काशी त्याग की थी, वैसे ही ब्रह्माके अनुरोधसे स्वरचाके लिये भगवान् रुद्र काशी त्याग करनेपर क्यों बाध्य हुए थे, उस विषयकी बात कहता हूं; सुनो। अगस्त्यने कहा है षड़ानन! ब्रह्माने कृपासागर भगवान् रुद्रसे कैसी प्रार्थना की थी, किसलिये प्रार्थना की, वह मुझसे कहिये। स्कन्दने कहा, विप्र! पुराकालमें पाद्मकल्पसे स्वायम्भुव मन्वन्तर तक साठ वर्ष सर्व्वलोक भयङ्करी अनावृष्टि हुई थी; जिससे निखिल प्राणी उत्पीड़ित हुए थे। कोई समुद्र किनारे कोई गिरिगुहामें कोई अति निम्न जलप्राय भूमिमें सुनिवृत्ति अवलम्बनकर समय बिताने लगे। इससे पृथिवी ग्रामनगरशून्य अरण्यसे परिणत हुए। सर्व्वत्र नगरमें पुरमें पिशिताशनका प्रादुर्भाव हुआ; भूमण्डलमें सर्व्वत्र ही अभ्रभेदी वृक्षमात्र दिखाई देने लगी। इतस्ततः महाचोर लोग आकर चोरोंके ऊपर भी उत्पात करने लगे। प्राणरक्षार्थ मांस-भोजनकर प्राणियोंको जीवन धारण करना पड़ता था। इस तरह अराजकतानिबन्धन मर्त्त्यलोकको अनिष्टापात-सूचना मिलनेपर सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माकी सृष्टिचेष्टा विफल होने लगी। तब जगद्योनि ब्रह्माने प्रजाक्षय देख महाचिन्तान्वित हो विचार किया, “इस प्रजाक्षयसे यज्ञादि कार्य्य लोप होंगे; देखता हूं, यज्ञभुक् देवगण क्षीणप्राय होंगे।” वह यह सब सोच रहे थे, इसी अवसरमें देखा, साक्षात् क्षत्रियधर्म्मकी तरह रिपुञ्जय नामक वज्रपुरजयी वीर मनुवंशीय राजा अविमुक्त महाक्षेत्रमें

निश्चलेन्द्रिय हो तपस्या करते हैं। ब्रह्मा उनके पास जा सगौरव बोले, "हे महामते! राजन रिपुञ्जय। तुम इस समुद्रपर्व्वतकाननवेष्टित इलावर्षका पालन करो; तुम्हें नागराज वासुकि, शीलसम्पन्ना अनङ्गमोहिनी नाम्नी नागकन्या भार्य्यार्थ प्रदान करेंगे। हे महाराज! स्वर्गके देवगण भी तुम्हारे प्रजापालनसे सन्तुष्ट हो रत्न और पुष्पराशि देंगे; इस लिये तुम्हारा नाम 'दिवोदास' होगा; तुम मेरे प्रसादसे दिव्यसामर्थ्य लाभ करोगे।" फिर राज-सत्तम रिपुञ्जयने ब्रह्माकी यह बात सुनकर बहुत तरहसे ब्रह्माका स्तव किया और कहा, हे त्रिभुवन स्रजनत्तम, महामान्य पितामह! अपरापर अनेक राजा हैं, उनसे कहिये; मुझसे क्यों ऐसी बात कहते हैं? ब्रह्माने कहा, तुम्हारे राज्य करनेसे देवता वृष्टि करेंगे, किन्तु पापिष्ठ राजाके राज्यमें कदाच नहीं करते; इसी लिये तुमसे कहता हूं। राजाने कहा, हे पितामह! यह आपकी महान् अनुग्रह है; अतएव आपकी आज्ञा शिरोधार्य्य की सही, किन्तु मुझे कुछ कहना है। वह यदि आप करें, तो मैं पृथ्वीमें निष्कण्टक राज्य कर सकता हूं। "हे पार्थिव! अपना मनोगत अभिलाष अविलम्ब प्रकाश करो, उसे मनमें सम्पन्न हुआ ही समझना, मेरा ऐसा कुछ भी नहीं, जो तुम्हारे अदेय हो।"

राजाने कहा, हे सर्व्वलोक पितामह! यदि मुझे पृथिवीपति होना पड़े, तो देवगण मर्त्यलोकमें न रहकर स्वर्गमें अवस्थान करें। उनके वहां रहनेसे भूतलमें मेरा राज्य निःसपत्न होगा, इससे प्रजा सुख पावेगी। यह सुनकर विश्वस्रष्टाने "तथास्तु" कहा, नरेश्वर दिवोदासने शपथ द्वारा घोषणा की, "देवता लोग स्वर्गमें जावें, मेरे पृथिवी शासन कालमें वह लोग स्वर्गलोकमें ही रहें, नागगण प्रस्थान करें, मनुष्य सुखी हों।" इसके उपरान्त ब्रह्मा प्रणामकर विश्वेश्वरसे सब निवेदन किया ही चाहते थे, कि भगवान् ईशानने उनसे कहा, "हे लोकनाथ! आओ, मन्दर नामक भूधर कुशद्वीपसे आकर यहां बहुकालसे घोर तपस्या कर रहे हैं, उन्हें वर दे आवें" कहकर पार्व्वतीनाथ नन्दी भृङ्गीको अग्रसरकर वृषारूढ़ हो जहां मन्दर तपस्या करते थे, वहां गये। वहां उपस्थित हो प्रसन्नात्मा देवदेव वृषध्वजने उनसे कहा, "हे पर्व्वतराज! तुम्हारा मङ्गल हो, उठो उठो, वर ग्रहण करो। यह सुनकर उन पर्वतने देव देव त्रिलोचनको भूमिष्ठ हो भूयोभूयः प्रणाम कर निवेदन किया, हे लीला विग्रहधारिन्! प्रणतैककृपानिधे शम्भो! सर्व्वज्ञ होकर भी मेरा अभिलषित नहीं जानते हैं—यह कैसा? हे शरणागतपालक! हे सर्व्व वृत्तान्तज्ञ! आप सर्व्वान्तर्य्यामी हैं, सर्व्वव्यापी सर्व्वकर्त्ता और

और आप ही सर्व्व हैं। हे प्रणतार्त्ति-भञ्जक! यदि इस अति शोचनीय, याचक पाषाणमयको आप अवश्य वर दिया चाहते हों, तो मैं अविमुक्त क्षेत्रके समान होनेकी इच्छा करता हूं,—आज, नाथ, कुशद्वीपमें मेरे मस्तकके ऊपर उमा सहित सपरिवार वास करिये, यही मेरी प्रार्थना है। यह सुनकर सबके अभीष्टदाता प्रभुने मानो क्षणकाल चिन्ता की। इसी समय ब्रह्माने अवसर देख प्रणामकर अग्र-सर हो मस्तकमें अञ्जलिबन्धनकर कहा, हे प्रभो! जगत्पते! आपने प्रसन्न हो मुझे चतुर्व्विध सृष्टिकार्य्यमें नियुक्त किया है, मैंने भी आपके अनुज्ञाक्रमसे यत्नपूर्व्वक वही सृष्टि की है। इससे फिर भूलोकमें साठ वर्ष अनावृष्टि होनेसे प्रजा नष्ट हुई है; अतीव अराजकता फैली है और जगत् घोर दुःखमें निमग्न हुआ है। यह देख मैंने मनुवंशीय रिपुञ्जय नामक राजर्षिको प्रजापालनके लिये राजत्वसे अभिषिक्त किया है। अभिषिक्त कालमें महातपा महावीर्य्य उन राजर्षिने मुझे इस समय-पाशसे बद्ध किया "आपकी आज्ञासे देवगण स्वर्गमें चले जावें, नागलोकमें नागलोग रहेंगे, तो राज्य करूंगा, नहीं तो नहीं," मैंने उनसे "तथास्तु" कहा है, इस समय जैसा कर्त्तव्य हो करिये। तब हे कृपानिधे! मन्दरको ऐसा वर प्रदान करिये, जिसमें वह नृपति भी प्रजापालन करें, यह कामना सिद्ध हो! विवेचनाकर देखिये, शतक्रतु और उनका राज्य, मेरे दो दण्ड कालामात्र स्थायी हैं; निमेषार्द्धमें निमिलनशील मत्तों तो गिनतीमें नहीं। यह सुनकर भगवान् हरने विधिकी गौरव रक्षा भी की और चारु मन्दर शोभित मन्दर-पर्व्वतको निर्म्मल बोधकर उनकी प्रार्थना स्वीकृत की। जम्बूद्वीपमें जैसी काशी सदा निर्व्वाणदायिनी है, उसी तरह कुश-द्वीपमें मन्दरगिरि बहुकाल निर्व्वाणदायक रहे। मन्दर पर्व्वतपर जानेके समय भगवान् शिवने, साधकोंकी सर्व्वसिद्ध और काशीस्थ मृत जन्तुओंकी मो-सम्पद् देनेके लिये और क्षेत्रकी रक्षा करनेके लिये विधिके भी अगोचर निज मूर्त्तिमय लिङ्ग स्थापन कर रखा; सुतरां मन्दराद्रिमें गमन करनेपर भी पिनाक-पाणिने काशी त्याग नहीं की, वरं लिङ्ग-रूपमें अवस्थान करते थे, अतएव इसका नाम "अविमुक्त" हुआ। पहले इसका नाम "आनन्दवन" था, किन्तु तबसे ही काशी अविमुक्त नामसे भूतलमें विख्यात हुई। इस तरह क्षेत्रका नाम अविमुक्त होनेसे लिङ्गका नाम भी वही हुआ। इन दोको प्राप्त करनेपर मनुष्यको फिर गर्भवास करना नहीं पड़ता। इस अवि-मुक्त क्षेत्रमें अविमुक्तेश्वर लिङ्गका दर्शन करनेसे जीवगण समुदय कर्म्मपाशसे मुक्त होते हैं। जगत्में सभी विश्वेश्वरकी

अर्चना करते हैं, किन्तु विश्वकर्त्ता वह विश्वेश्वर, भक्ति मुक्तिदाता इन अविमुक्तेश्वर लिङ्गको अर्चना करते हैं। पूर्व्वकालमें किसीने कहीं भी किसीका लिङ्ग स्थापन नहीं किया, अतएव लिङ्गका आकार कैसा है, वह हमलोगोंमें कोई नहीं जानते थे। ब्रह्मा विष्णु प्रभृति देवगण और वसिष्ठादि ऋषिगणने अविमुक्तका आकार देख अपरापर लिङ्ग स्थापन किया था। वह अविमुक्त लिङ्ग ही आदि लिङ्ग है, इन्हीसे भूतलमें लिङ्गान्तरकी उत्पत्ति हुई है। इन अविमुक्तेश्वर लिङ्गका नाम सुननेसे मनुष्य आजन्म सञ्चित पापसे क्षणकालमें असंशय मुक्त होते हैं। दूरस्थित व्यक्ति यदि इनका नाम स्मरण करें तो जन्मद्वयार्ज्जित पापसे तत्क्षणात् मुक्ति लाभ करेंगे। अविमुक्त क्षेत्रमें अविमुक्त लिङ्ग देखनेसे त्रिजन्मकृत पाप विदूरित होता और पुण्य सञ्चय होता है। इनके स्पर्शसे पांच जन्मकी अज्ञानकृत पापराशि दूर होती है। इनकी अर्चना करनेसे मनोभीष्ट सिद्धि होती है। फिर जन्मभागी नहीं होना पड़ता; यथाशक्ति और यथामति जो इनका स्तव अर्च्चना और प्रणाम करते हैं वह व्यक्ति जगतमें अर्च्चित स्तुत और और वन्दित होते हैं। काशीमें स्वयं विश्वनाथार्च्चित इन अनादि अविमुक्त लिङ्गको भक्तिके साथ सेवा करना मनुष्यका कर्त्तव्य है। इस पृथिवीमें नाना तीर्थस्थानमें लिङ्ग हैं, वह माघ मासकी चतुर्द्दशीमें इन अविमुक्त लिङ्गके पास आकर रहते हैं। जो व्यक्ति इन लिङ्गके निकट, माघमासकी कृष्णा चतुर्द्दशीरात्रि जागरण करेंगे, वह सर्व्वदा जागरूपयोगिजनके भक्तिभाजन होते हैं। नाना तीर्थके लिङ्ग सकल चतुर्व्वर्ग फलदायक होनेपर भी माघमासकी कृष्णा चतुर्द्दशीमें यहां अविमुक्त लिङ्गकी उपासना करेंगे। अविमुक्त लिङ्गके ऊपर दृढ़भक्तिरूप वज्र यदि मनुष्यके पास रहे, तो सञ्चित पापरूप पर्व्वतके भयसे उन्हें भीत नहीं होना पड़ता। यह लिङ्ग चतुर्व्वर्ग फल प्रदान करते हैं; सुतरां पापियोंके अर्ज्जित पापक्षय पानेमें सर्व्वदा ही दिखाई देते हैं। जिन्होंने विश्वेश्वरके पीठस्थानपर अविमुक्त महाशिव लिङ्गको नहीं देखा, वह मोहान्ध हैं और जो व्यक्ति दर्शन करते हैं, उन्हें देखकर कृतान्तदेव दूर हीसे हाथजोड़ प्रणाम करते हैं। जिन्होंने इन महालिङ्गका दर्शन किया है और हाथसे स्पर्श किया है, वह चित्रनिर्म्माण धन्य और हस्त सार्थक हैं। जो मनुष्य पवित्र हो नियमपूर्व्वक त्रिसन्ध्या इनका जप करते, वह स्थानान्तरमें मृत होने पर भी काशीकी मृत्युका फल लाभ करेंगे। जो इन महालिङ्गका दर्शनकर ग्रामान्तरमें जाते हैं; उनको अविलम्ब कार्य्यसिद्धि

होती है और निर्विघ्न घरमें प्रत्यागत होते हैं।

एकोनचत्वारिंश अध्याय ॥ ३९ ॥

चत्वारिंश अध्याय।

गृहस्थधर्म्म।

स्कन्दने कहा, मैंने अविमुक्तेश्वरका माहात्म्य तुमसे कहा ; अब यदि और कुछ सुननेकी इच्छा हो, तो फिर कहूंगा। अगस्त्यने कहा, हे षण्मुख! अविमुक्तका माहात्म्य बार बार सुनकर मेरे कर्णद्वय सार्थक हुए हैं सही, किन्तु तब भी मेरी परितृप्ति नहीं हुई। अतएव कहिये, किस उपायसे अविमुक्तेश्वर लिङ्ग और अविमुक्तक्षेत्र प्राप्त किया जा सकता है? स्कन्दने कहा, हे महामते कुम्भज! जिससे इन श्रेयोदाता अविमुक्तकी प्राप्ति होती है, वह कहता हूं सुनो। हे विप्र! जिस पुण्यप्रभावसे सब अभीष्ट सिद्ध होते हैं, उस पुण्यका मूल स्मृतिमार्गसेवा है। हे मुने! जो पुरुष इस स्मृतिविहित पथसे विचरण करते हैं, उनके संसर्गसे कलि और कालभय नष्ट होता है। उक्त कलि और काल, वधके लिये सदा छिद्रान्वेषणमें रत हैं। जो ब्राह्मण, निषिद्ध आचरण करते और वैध कार्य्य नहीं करते, उन्हींका वह यह छिद्र पा विनाश करते हैं। अतएव, पहले तुमसे निषिद्ध आचरणकी बात कहता हूं; इसीसे उसका परिहार करनेसे मनुष्यकी नरकगति नहीं होती। गृहस्थ व्यक्ति पलाण्डु, विड्वराह, बहुबारक फल, (१) लशुण, गृञ्जन, गोपीयूष, (२) तण्डुलीय, (३) और छत्रा (४) भक्षण न करेंगे। छेदनार्थ वृक्षनिर्य्यास, पायस, अपूप, (१) कुलो देवता (२) और पितरोंका अननुवेदित मांस और वत्सहीना या स्थानान्तरितवत्सा गायके दुग्ध भक्षणमें विरत होंगे। अश्वादि एक खुरविशिष्ट पशुका दुग्ध ऊंट और मेषदुग्ध पान न करेंगे। रातके समय दही और दिनमें नवनीत भक्षण न करेंगे। टिट्टिभ, चटक, हंस, चक्रवाक, प्लव, (३) बक, सारस, ग्राम्यकुक्कुट, शुक, खञ्जन और शरारि, (५) प्रभृति जालपाद, मद्गुरु (६) प्रभृति मत्स्यभक्षक और श्येनादि (७) मांसाशी पक्षी भोजन न करेंगे। मत्स्य और सब जीवोंका मांस दोनो ही समान है, अतएव मत्स्य सर्व्वतो भावसे त्याग करेंगे। किन्तु बोयाल या रोहु मत्स्य, दैव और पैत्रादिकर्म्ममें नियुक्तकर भोजन कर सकते हैं। जो मांस भक्षण करते हैं, वह शशक, शल्यक, (८) कच्छप, सेधाख्य, पशु, गोधा और पशुपक्षी भोजन कर सकते हैं। यदि दीर्घायु होने और स्वर्गलाभ करनेकी कामना हो, तो यत्नपूर्व्वक मांस त्याग करेंगे ; कारण यज्ञकार्य्यमें पशुवध ही

स्वर्गकी अनुकूल है और काम्यमें नहीं। खण्ड (८) तैलादिस्त्रेहनिर्मित और सब पर्य्युषित द्रव्य त्याग करेंगे। मांस भक्षण कदापि अभिप्रेत नहीं, तथापि श्राद्धमें, यज्ञमें, औषधरूपमें, प्राणात्यय स्थलमें या ब्राह्मणके अनुग्रहमसे मांस भक्षण करनेसे दोषग्रस्त होना नहीं पड़ता, लोभवश मांस भक्षण करनेसे गुरुतर पाप होता है; यहांतक, कि जो मृगया द्वारा जीविका करना चाहें, उन्हें वैसा पाप नहीं होता। ब्रह्माने यज्ञके लिये मृग, पशु, वृक्ष और ओषधिकी, सृष्टि की है, अतएव ब्राह्मण उन्हें हनन करनेसे हिंसा-पापमें लिप्त न होंगे, उनलोगोंकी भी सद्-गति होगी। देवता, पितृलोग, मधुपर्क और यज्ञके लिये प्राणिहिंसा हिंसामें गण्य नहीं। किन्तु दूसरी तरहकी हिंसा करनेसे निस्तार नहीं होता। जो मूढ़ व्यक्ति आत्मपुष्टिके लिये प्राणिहिंसा करते हैं, उन दुराचारि-योंको इहकाल और परकालमें कहीं भी सुख नहीं मिलता। अनुमतिदाता, वधकारी, अस्त्र द्वारा खण्डखण्डकारी, क्रयकारी, वि-क्रयकारी, पाचक, परिवेष्टा और भोक्ता इन आठ मनुष्यको घातक कहते हैं। जो मनुष्य शत वर्षतक प्रति वर्ष अश्वमेध यज्ञ करते हैं और जो अवैध मांस-भक्षण नहीं करते, उन दोनोमें शेषोक्त व्यक्तिको ही विशिष्ट फल होता है। सुखैषी व्यक्ति दूस-रेको भी अपनी तरह देखेंगे, सुखदुःख जैसे अपने लिये, वैसे ही परायेके लिये भी समझेंगे। परायेके सुखसे सुखी और दुःखसे दुःखी होनेसे अपने लिये परायेसे भी उसी तरह करानेकी सम्भावना होती है। इस जगत्में बिना दुःखके अर्थागम नहीं होता; अर्थहीन व्यक्तिके क्रियाकलापकी सम्भावना नहीं; क्रियाकलाप न करनेसे धर्म्मार्ज्जन नहीं होता; धर्म्महीन होनेसे सुखकी सम्भावना कहां? सुख सबका ही वाञ्छनीय है सही, किन्तु धर्म्मसे ही उसकी उत्पत्ति है; अतएव यत्नपूर्व्वक ब्राह्मणादि चतुर्व्वर्णको अर्ज्जन करना ही कर्त्तव्य है। न्यायार्ज्जित अर्थसे परलो-कका काम्य करेंगे और विशुद्धकालमें विशु-द्धभावसे यथाशास्त्र सत्पात्रको दान देंगे। जो अविधिक्रमसे सत्पात्रको दान देते हैं, उनका दान ही केवल वृथा नहीं होता, भी विनष्ट होता है। जो विपदुद्धा[illegible] ऋणमोचन और कुटुम्बपालनके लिये दान करते हैं, उनका वह दान निःसंशय इह-काल और परकालमें अक्षय होता है। जो व्यक्ति निज अर्थसे पितृमातृहीन जनका उपनयन, विवाह प्रभृति संस्कार कर देते हैं, उन्हें अनन्त श्रेयोलाभ होता है। एक द्विजको स्थापन करनेसे जो पुण्यलाभ होता है, वह असंख्य अग्निहोत्र या अग्निष्टोम प्रभृति यज्ञ करके भी नहीं प्राप्त होता। जो व्यक्ति अनाथ युवा ब्राह्मणका विवाह करा देते हैं, वह इहकालमें सुखी और

परकालमें अक्षय स्वर्गवास पाते हैं। जो कन्या पित्रालयमें अपरिणीत अवस्थामें रजोदर्शन करे, उसका पिता भ्रुणहत्या पापसे पापी होता और वह कन्या वृषली (शूद्रा) हो जाती है। जो अज्ञानवश उक्त कन्यासे विवाह करते हैं; उनके साथ सम्भाषण या पंक्तिभोजन कभी न करेंगे. कन्या और वर दोनोंका दोष बताकर पिता सम्बन्ध प्रणयन करेंगे, नहीं तो पाप ग्रस्त होना पड़ेगा। नारीगण सदा ही पवित्र हैं, इन लोगोंको किसी तरहसे दोष नहीं होता; कारण, प्रतिमासमें जो रजः होती है, वह इनका पापविनष्ट करता है। अग्नि, चन्द्र और गन्धर्व्व यह तीन जन पहले ही उनका भोग करते हैं; पीछे मनुष्य भोग करते हैं; इस मतमें यह लोग किसी तरह भी दोषी नहीं। सोम स्त्रियोंके शुचित्व हैं, अग्निने सर्व्वमेध्यता और गन्धर्व्वने कल्याणराशि दी है; अतएव वह सदा पवित्र हैं। अग्नि रजःकालमें, चन्द्र रोमोद्गममें और गन्धर्व्व स्तनोद्भव समयमें कन्याका भोग करते हैं, इसलिये इनसे पहले इसका सम्पादन करना उचित है। रोमदर्शन कालके विवाहसे सन्तान नष्ट होती है, यौवन चिह्न प्रकाशसे वंश नहीं रहता और रजः प्रकाश कालमें पितृ-मरण होता है, इसलिये इन इन अवस्थाको परित्याग करेंगे। अतएव कन्यादानके फलप्रार्थी हों, तो रजोदर्शनसे पहले कन्या दान देंगे; नहीं तो दाताको फल प्राप्त नहीं होता और ग्रहीता अधःपतित होते हैं। सोम प्रभृति देवताओंके भोगसे पहले कन्यादानका फल होता है; इसके बाद दान देनेसे दाताको स्वर्गलाभ नहीं होता। शय्या, आसन, शण, नेपालदेशीयकम्बल, नासिका मुख, कुश और समस्त यज्ञपात्रको पण्डित लोग कभी दूषित नहीं बताते। दोहनके समय गोके बछरेका मुख, पक्षि-मुखभ्रष्ट फल, रतिकालमें नारीका मुख और वधके लिये मृगग्रहण कालमें कुक्कुरका मुख भी शुचि जानेंगे। छाग और अश्वका मुख गोपृष्ठ, ब्राह्मण चरण और स्त्रियोंका सर्व्वाङ्ग पवित्र है। बलपूर्व्वक उपभोग करने या चौरहस्तगत होनेसे भी नारीको त्याग न करेंगे; इनका त्याग शास्त्रमें भी नहीं दिखाई देता। अम्लयोगसे ताम्रपात्रका, भस्म द्वारा कांस्यका रजो द्वारा नारीका और प्रवाह रहनेसे नदीकी शुद्धि होती है। जो नारी मनमें भी कभी दूसरे पुरुषको चिन्ता नहीं करतीं, वह इसकालमें कीर्त्ति और परकालमें उमाके साथ एकत्र सुखभोग करती हैं। पिता, पितामह, भ्राता, सकुल्य, जननी, यह कन्या दानके अधिकारी हैं। इन एक एकके नाशसे दूसरे दूसरे कन्यादान करेंगे; न करनेसे प्रति ऋतुमें भ्रुणहत्याका पाप होगा। इन लोगोंके अभावसे कन्या स्वयंवरा होगी। स्त्रीके

व्यभिचारिणी होनेपर जबतक ऋतु न हो, तबतक उसे सब अधिकारच्युतकर, मलिन वस्त्र पहना पिण्डमात्र दे घृणितभावसे अधःशय्यापर वास करायेंगे; फिर ऋतु होनेपर उसकी शुद्धि होगी। किन्तु गर्भ या गर्भपात और पतिवध प्रभृति महापातकसे स्थलमें उसका त्याग करना वैध है। शूद्र केवल शूद्राको; वैश्य शूद्रा और वैश्याको; क्षत्रिय शूद्रा, वैश्या और क्षत्रियाको और ब्राह्मणको और इन तीनो वर्णोंकी ही कन्याको विवाह सकते हैं। विप्र, शूद्राको शय्यार बिठाकर अधोगतिको प्राप्त होते और उसके गर्भसे पुत्र उत्पादनकर ब्राह्मण्यसे भ्रष्ट होते हैं। जिनके देवता, पितृपुरुष और अतिथिकी देयवस्तु शूद्रा ही सम्पादन करती हैं, वह उसका भोजन न करें, वह व्यक्ति भी स्वर्ग लाभसे वञ्चित होता है। उस घरकी भगिनी प्रभृति कुलस्त्रीगण सम्मान प्राप्त नहीं होतीं। वह अभिचारहतकी तरह निश्चय ही विनष्ट होते हैं। अतएव उनको अन्न, वस्त्र और अलङ्कार देकर क्या सम्पद, क्या विपद, सब समयमें ही सम्मान करेंगे; ऐसा करनेसे सम्पद्की वृद्धि होती है। जहां नारीगण इन सब लाभसे प्रफुल्ल होती हैं, वहां देवतागण विहार करते हैं और क्रियाकलाप सभी सफल होता है। जिस गृहमें पति पत्नीसे और पत्नी पतिसे सन्तुष्ट हों, वहां पद पदपर कल्याण है। जपका नाम अहुत, होमका नाम हुत, भूतबलिका नाम प्रहुत, पितृसन्तृप्तिका नाम प्राशित ब्राह्मणपूजाका नाम ब्राह्मयहुत है; यह पञ्चयज्ञ जो ब्राह्मण करते हैं, वह कभी अवसन्न नहीं होते; किन्तु इनके अनुष्ठानमें पञ्चसूनादोष प्राप्त होता है। ब्राह्मणको देखनेसे कुशल, क्षत्रियसे अनामय, वैश्यसे सुख और शूद्रको देखकर सन्तोष पूछेंगे। जन्मसे अष्टम वर्षतक शिशु कहे जाते हैं। जबतक उसका उपनयन न हो, तबतक खाने पीनेमें कुछ दोष नहीं। पोष्यवर्गके प्रतिपालनसे दृष्ट और अदृष्ट दोनो ही फल मिलता है, किन्तु न करना प्रत्यवाय है, अतएव यत्नपूर्वक उनका प्रतिपालन करेंगे। माता, पिता, गुरु, पत्नी, सन्तान, आश्रितवर्ग, अभ्यागत, अतिथि और अग्नि यह नौ जन मात्र पोष्यवर्गमें गण्य हैं। जिनके आश्रयमें बहुत लोग रहते हैं, उन्हींका जीवन सार्थक है; नहीं तो जो व्यक्ति अपना उदरमात्र भरते हैं, उन्हें जीवन्मृत समझेंगे। विभूतिप्रार्थी व्यक्ति और दीन, अनाथ, विशिष्टको दान देना उचित है, दान न करनेसे परभाग्योपजीवी हो जन्म ग्रहण करना पड़ता है। गृहस्थ सुशील, दयालु, क्षमाशील और देवता या अतिथिके प्रति भक्तिमान हों, तो धार्मिक कहे जाते हैं। जो ब्राह्मण रातमें मध्यम दोपहर निद्रामें यापन करें और हुतावशिष्ट द्रव्य भोजन करें, उन्हें

कदापि अवसाद नहीं होता। किसी व्यक्तिके गृहमें आगत होनेपर सदा वही नो अमृत व्यय करेंगी—साम वाक्य, सौम्य-दृष्टि, सौम्यमुख, सौम्यचित्त, अभ्युत्थान, स्वागतप्रश्न, सस्नेह सम्भाषण, समीप उप-वेशन और पश्चाद्गमन—इन्हें गृहस्थका उन्नतिकारण जानना चाहिये। आसन, पैर धोनेका , हताशक्ति भोजन, भूमि, शय्या, तृण, पानीय जल, तैल और दीप यह नो अल्प व्ययका कार्य्य भी गृहस्थोंका कर्त्तव्य है, इससे अभीष्टसिद्धि होती है। पिशुनता, परदारसेवा, क्रोध परापकार, अप्रिय, अनृत, द्वेष, दम्भ और माया यह नो स्वर्गपथकी प्रतिबन्धक हैं, अतएव गृह-स्थके त्याज्य हैं। स्नान सन्ध्या, जप, होम वेदपाठ, देवपूजा, वैश्वदेव बलि, अतिथि-सेवा और पितृतर्पण यह नो कार्य्य गृहस्थ प्रतिदिन अवश्य करेंगी। हे मुने! छिपाने लायक नो क्या हैं?—कहता हूं, सुनो;—जन्म नक्षत्र, मैथुन, मन्त्र, गृह-च्छिद्र, वञ्चना, वायु धन, अपमान और स्त्री इन सबको कभी प्रकाश न करेंगी। छिपाकर क्रिया पाप, निष्कलङ्कता, ऋणदान, ऋणशोध, निजवंश, क्रय, विक्रय, कन्यादान और गुणगरिमा यह नो प्रकाश करेंगी, इसके सिवा और कुछ भी कहीं प्रकाश न करेंगी। माता, पिता, गुरु, दीन, अनाथ, उपकारक व्यक्ति, सत्पात्र, मित्र और विनीत इन नोको दान देना अनन्त फलदायक है। चाटुकार, कुशीलव, तस्कर, कुवैद्य, धूर्त्त, शठ, कितव, बन्दी और मन्दजन, इन नोको दान देना फलदायक नहीं हैं। सन्तान सत्त्वसे सर्व्वस्व, पत्नी, शरणागत व्यक्ति, अल्पकालके लिये गच्छित वस्तु, बन्धक द्रव्य, कुलवृत्ति, दीर्घकालके लिये गच्छित वस्तु, स्त्रीधन और पुत्र यह नो वस्तु विपद्‌से पतित होनेपर भी कभी न देंगी; जो व्यक्ति मोहवश देते हैं, बिना प्रायश्चित्त उनको शुद्धि नहीं होती। यह नो नवक अर्थात् पकाशीत विषयमें जिन्हें ज्ञान होता है, वह लक्ष्मीवान होते हैं। और अब नोको बात कहता हूं, यह सबका सर्व्वफलदायक और धर्म्मसाधन है; यथा—सत्य, शौच, अहिंसा, क्षमा, ज्ञान दया, दम, अस्तेय और इन्द्रिय निग्रह। गृहस्थ व्यक्ति स्वर्गमार्गदायिनी, सज्जनाभिमता, पवित्र इन नवोंका अभ्यासकर अवसाद पावेंगी, जिस व्यक्तिकी रसना, भार्य्या, पुत्र, भ्राता, मित्र, भृत्य, और आश्रित यह विनय-सम्पन्न हैं; उनका गौरव सर्व्वत्र होता है। मद्यपान असत्सङ्ग, पतिविरह, इतस्ततोभ्रमण कुसमय शयन और पराये घरमें वास,—यह छः नारियोंके व्यभिचारका कारण है। जो मनुष्य उचित मूल्यपर धान्य खरीदकर अधिक मूल्यपर विक्रय करते हैं, उन्हें वार्द्धषिक कहते हैं; उनका अन्न भक्षण न करेंगी। आगे माहिषिकको बीचमें वृष-लीपति और अन्तमें वार्द्धषिकको देखकर

पितृगण निराश हो चले जाते हैं। व्यभिचारिणी रमणीको महिषी कहते हैं; उस दुष्टा नारीकी कामना, जो पुरुष पूर्ण करते उन्हें माहिषिक कहते हैं। जो नारी अपना वृष यदि त्यागकर परवृषसे रमण करती हैं, उन्हें वृषली कहते हैं, नहीं तो शूद्रपत्नी वृषली नहीं है। जबतक अन्न उष्ण रहे और मौनावलम्बनकर भोजन करते हों और जबतक हविर्गुण व्यक्त न किया हो, तबतक पितृगण भोजन करते हैं। विद्या और विनयसम्पन्न श्रोत्रियके घर आनेपर परमगति प्राप्त होगी कहकर ओषधिगण आनन्दसे नृत्य करते हैं और शौचाचारभ्रष्ट वेदवर्ज्जित ब्राह्मणके आनेपर हमने कौन पाप किया है, जो हमें इसके उदरमें जाना पड़ा कहकर रोते हैं। जिनका उदरगत अन्न वेदाभ्याससे जीर्ण होता है, वह व्यक्ति दाताके ऊर्द्धतन और अधस्तनके दश पुरुषका उद्धार करते हैं। स्त्री सर्व्वमुण्डन, गोवधका अनुगमन, रातके समय गोष्ठमें वास और वैदिक मन्त्र न सुनेंगी। स्त्रियोंका मस्तक मुण्डन करनेमें दो उंगली परिमित केश छेदन करेंगी, और समस्त केश रहने देंगी। किन्तु राजा, राजपुत्र या वेदपारदर्शी ब्राह्मण, सबको ही सर्व्वमुण्डन करना होगा न करनेसे प्रायश्चित्त करना पड़ता है। केशकी रक्षा करनेसे दूना प्रायश्चित्त होगा और वेदज्ञ ब्राह्मणको द्विगुण दक्षिणा देनी पड़ेगी। जो व्यक्ति विवाहाग्नि ग्रहण न कर अपनेको गृहस्थ समझते हैं, उनका भोजन करना उचित नहीं और उन्हें वृथापाक कहते हैं। अनग्निक अकृतदार ज्येष्ठभ्राताके होनेपर भी जो व्यक्ति विवाह और अग्निग्रहण करते हैं, उन्हें परिवेत्ता और उनके ज्येष्ठको परिवित्ति कहते हैं। उक्त परिवेत्ता, परिवित्ति और जिस नारीसे विवाह करें, वह परिविन्ना स्त्री हैं, इन सबोंके दाता याजकके सहित नरकगामी होते हैं। ज्येष्ठभ्राता यदि क्लीव, देशान्तरस्थ, मूक, संन्यासी, जड़, कुब्ज, खर्व्व और पतित हो, तो ऐसे विवाहमें दोष नहीं है। जो अर्थके लोभसे वेद बेचते हैं, वह उसमें जितने अक्षर हों, उतने भ्रूणहत्या पापके पापी होते हैं। जो व्यक्ति संन्यास अवलम्बनकर फिर मैथुनसेवा करते हैं, वह षष्टिसहस्र वर्षतक विष्ठाके कृमि होकर रहते हैं। शूद्रान्न, शूद्रसहवास, शूद्रके साथ एकत्र उपवेशन और शूद्रसे कोई विद्यालाभ करना यह सब ज्वलन्त ब्राह्मणको भी पतित करते हैं। जो अज्ञानान्ध ब्राह्मणगण, शूद्रसे भिक्षा ग्रहणकर पाक करते हैं, वह ब्रह्मतेजोभ्रष्ट हो भीषण नरकमें जाते हैं। घृतादि स्नेह पदार्थ, व्यञ्जन और लवण हाथपर न देंगी; देनेसे दाताको फल नहीं होता और भोजनकर्त्ता पाप भोगते हैं। लौहमयपात्रमें अन्न न देंगी; देनेसे भोजनकारी विष्ठा भोजन करते और

दाता नरकगामी होते हैं। उंगली द्वारा दन्तधावन, (दूधकी चाय) केवल लवण भोजन और मृत्तिकाभक्षण गोमांसभक्षणके समान जानेंगे। जल, पायस, भिक्षा, घृत और लवण हाथमें देनेसे ग्रहण न करेंगे; कारण वह गोमांसकी तरह अभक्ष्य है। यदि एक मूर्ख सामने हो और गुणवान् व्यक्ति दूर हों, तो उसे अतिक्रमकर गुणसम्पन्न व्यक्तिको ही दान देंगे; मूर्खको अतिक्रम करनेसे कोई पाप नहीं होता। यदि वेदज्ञानशून्य विप्र वहां हों, तो उन्हें भी अतिक्रम करनेसे कोई पाप नहीं होता; कारण प्रज्वलित अग्नि परित्यागकर कोई भस्ममें आहुति नहीं देता। जो व्यक्ति सन्निहित वेदाध्ययनपर ब्राह्मणको भोजन और दान विषयमें अतिक्रम करते हैं, उनका सप्तकुल पर्य्यन्त दग्ध होता है। (गोपालक रखवाला) वणिकवृत्ति, शिल्पजीवी, नटवृत्तिजीवी, भृत्यभावाश्रित और वृद्धिजीवी (सूदखोर) ब्राह्मणके प्रति शूद्रवत् व्यवहार करेंगे। देवद्रव्यके विनाशसे ब्रह्मस्वहरणमें और ब्राह्मणके अतिक्रमसे कुल आयु, विनष्ट होता है। "गो ब्राह्मण और अग्निको दान न करो" जो कहते हैं, वह शतबार तिर्य्यक योनिको प्राप्त हो चाण्डाल होकर जन्म लेते हैं। वाक्यमें "दूंगी" स्वीकारकर कार्य्यसे परिणत न करनेसे, उसे इहलोकका और परलोकका धर्म्मअनृत ऋण समझेंगे। यज्ञशेषको अमृत और भोजनशेषको विघस कहते हैं; प्रतिदिन वह अमृत और विघस भोजन करेंगे। वस्त्रको वाम अंशसे भ्रष्ट हो नाभिदेशमें अवस्थान करनेको एकवस्त्र कहते हैं, देव और पैत्र कार्य्यमें वह वर्ज्जन करेंगे। ब्राह्मणश्रेष्ठ स्नानके बाद पितृतर्पण करते, इसीसे वह सम्पूर्ण पितृयज्ञका फल प्राप्त करते हैं। जो व्यक्ति भोजनमें दोनो हाथ धोकर एक गण्डूष जल पान करते हैं, वह देव, पैत्र और अपनेको दूषित करते हैं। गण, गणिका, ग्रामयाजी और प्रथम गर्भ कालमें स्त्रियोंका अन्न भोजन करनेसे चान्द्रायण व्रत करना पड़ता है। जिस दुरात्माके घर ब्राह्मण, पक्ष और महीनेमें भोजन नहीं करते, उनका अन्न भक्षण करनेसे चान्द्रायण व्रतका आचरण करेंगे। यज्ञकारी, यज्ञमें, दीक्षित, यति, ब्रह्मचारी-कर्म्मकारी ऋत्विक्गणको जननाशौच नहीं होता। अजीर्ण प्रकाश, वमन, श्मश्रुवपन, मैथुन, दुःस्वप्नदर्शन और दुर्ज्जनका स्पर्श होनेसे स्नान करना चाहिये। श्मशानवृक्ष, श्मशानयूप, शिवनिर्म्माल्यभोजी और वेदविक्रयी व्यक्तिको स्पर्श करनेपर सवस्त्र जलमें प्रवेश करेंगे। अग्निगृहमें, गोस्थानमें और देवब्राह्मण-सन्निधानमें वेदाध्ययन, भोजन, पान और पादुका, परित्याग करेंगे। खल और क्षेत्रगत धान्य, वापी और कूपस्थित जल और गोष्ठगत

दुग्ध वह सब अग्राह्य मनुष्यका होनेपर भी ग्रहण कर सकेंगे। मस्तक प्रावरणसे वेष्टन, दक्षिणास्य हो और पादुका पहनकर जो भोजन करते हैं, वह राक्षसभोजन करते हैं। मण्डल न कर भोजन करनेसे राक्षसपिशाचादि नृशंस लोग अन्नका रस हरण कर लेते हैं। ब्रह्मादि देवगण और वशिष्ट प्रभृति महर्षिगण मण्डलका आश्रय करते हैं; अतएव भोजनके समय मण्डल करेंगे, ब्राह्मण चतुष्कोण मण्डल करेंगे; क्षत्रिय त्रिकोण, वैश्य वर्त्तुल और शूद्रको अभ्युक्षण करनेसे ही होगा। क्रोड़देशमें, पाणितलमें और जीर्णवस्त्र, आसन और शय्याके ऊपर भोजनपात्र रख और मलादि दूषित हो भोजन न करेंगे। धर्म्मस्वरूप रथारोही, वेद खड्गधारी ब्राह्मणगण, क्रीड़ार्थ भी जो कहें, उसे परम धर्म्म मानेंगे। धर्म्मकामनाके बाद रात्रिकालमें दधिसंयुक्त भ्रष्ट द्रव्य भोजन न करेंगे; भोजन करनेसे उनके धर्म्मकी हानि और व्याधिपीड़ा होती है। फाणित, दुग्ध, जल, लवण, मधु और काञ्जिक (कांजी) हाथसे देनेपर कृच्छ्रचान्द्रायणका व्रत करेंगे। जो धर्म्मज्ञ व्यक्ति गन्ध, आभरण और माल्य प्रदान करते हैं, वह जिस जिस योनिमें जन्म लेते, वहां ही सन्तुष्ट और उत्तम गन्धयुक्त होते हैं। नीलवर्णसे रञ्जित वस्त्र दूरसे परिहार करेंगे, किन्तु शय्यापर स्त्रियोंकी क्रीड़ार्थ संयोगसे दोष नहीं होता। पालनमें, विक्रयमें उस धनसे जीविका निर्व्वाह करनेसे ब्राह्मण अपवित्र होते हैं, तीन बार कृच्छ्रव्रत न करनेसे शुद्धि नहीं होती। जो व्यक्ति नीलावस्त्र धारण करते हैं, उनका स्नान, दान, जप, होम, वेदपाठ, पितृतर्पण और पञ्चमहायज्ञ वृथा है। जो ब्राह्मण अपने अङ्गमें नीला वस्त्र धारण करते हैं, उस वस्त्रमें जितने सूत होते, उतने दिन वह नरकमें वास करते और अहोरात्र उपवासकर पञ्चगव्य भक्षणसे उनकी शुद्धि होती है। ब्राह्मणका अन्न अमृत, क्षत्रियका अन्न पयः, वैश्यका अन्न अन्न और शूद्रके अन्नको रुधिर कहते हैं। वैश्वदेव कार्य्यमें, होम, देवार्च्चना, जप और ऋक्‌यजुःसामवेदसंयोग ब्राह्मणका अन्न अमृत होता है। व्यवहारानुरूप न्यायानुसार अर्ज्जन होता है इसलिये प्रजापालन निबन्धन क्षत्रियके अन्नको "पयः" कहते हैं। कृषि, गोपालन और वाणिज्य प्रभृतिसे हलकर्षणरूप यत्नसे वैश्यका अन्न उत्पन्न होता है, अतएव उसे "अन्न" कहते हैं। अज्ञानतिमिरान्ध मद्यपानरत वेदवर्ज्जित होनेसे शूद्रका अन्न "रुधिर" नामसे विख्यात है। ज्ञानी व्यक्ति सामान्य कारणसे वृथा शपथ न करेंगे; वृथा शपथ करनेसे इहकाल और परकाल विनष्ट होते हैं। स्त्रियोंसे, विवाह विषयमें गोभक्ष विषयमें, धनक्षयकालमें और ब्राह्म-

गादिके उपकार स्थलमें शपथ करनेसे पाप नहीं होता। ब्राह्मणको सत्यप्रमाणासे क्षत्रियको यान और अस्त्रस्पर्शसे, वैश्यको गो, बीज और काञ्चनस्पर्शसे और शूद्रको समस्त पातक द्वारा शपथ करावेंगे। इनको अग्निआहार करावें जलमें निमग्न करें अथवा स्त्री पुत्रका मस्तक स्पर्श करावेंगे। यम यमपद वाच्य नहीं हैं, आत्माको यम कहते हैं; जिस व्यक्तिने वह आत्मसंयम किया है, यम भी उसका कुछ नहीं कर सकते : तीक्ष्ण असि, विषधर सर्प अथवा नित्य क्रुद्ध शत्रु वैसे भयानक नहीं हैं, जैसे भयप्रद असंयतात्मा होते हैं लोग जो क्षमाशीलको असमर्थ समझते हैं, यही एक दोष उनका है, दूसरा दोष दिखाई नहीं देता। शब्दशास्त्रमें रत, रमणीय गृहप्रिय, भोजनाच्छादनपरायण अथवा लौकिक वृत्तिग्रहणासक्त व्यक्तिको मुक्तिलाभ नहीं होता। जो व्यक्ति सुशील, जितेन्द्रिय, वेदाध्ययनमें रत और अहिंसक हैं, उन्हें निःसंशय मोक्षप्राप्ति होती है। किन्तु काशीमें शील, इन्द्रियजय, योग या वैराग्य भा कुछ भी न चाहिये; इन सबके बिना ही अनायास मुक्ति होती है। विश्वेश्वरकी सेवा ही योग है। काशीपुरीमें निवास ही तपस्या है, वहांका दान ही व्रत और उत्तरवाहिणी गङ्गाका स्नान ही नियम है। स्कन्दने कहा, जो व्यक्ति न्यायार्ज्जितधन, तत्त्वज्ञाननिष्ठ, अतिथिसेवापरायण, श्राद्धकारी और सत्यवादी हैं, वह गृहस्थ होनेपर भी इस काशीमें मुक्ति पाते हैं। इस काशीमें गृहस्थ दीन, अन्ध, कृपण और याचकोंको विशेषतः अन्न देनेसे और गृहस्थोचित कर्म्म करनेसे मुक्तिलाभ करते हैं। ऐसे आचरणशील मनुष्यके प्रति काशीनाथ प्रसन्न होते हैं और विश्वेश्वरके प्रसादसे काशीप्राप्त होनेसे मुक्ति होती है। इस काशीकी सेवा करनेसे ही सर्व्वतीर्थमें स्नान, सर्व्वयज्ञका अनुष्ठान अशेषविध दान हो जाता है।

चत्वारिंश अध्याय समाप्त ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंश अध्याय।

योगाभ्यासकीर्त्तन।

स्कन्दने कहा, इस तरह गृहस्थके सब सदाचार प्रतिपालित होनेपर, वह जब देखें, कि उनकी देहका मांस समुदाय लोल हुआ है, केश पक जानेपर भी मस्तक शुभ्र हुआ है, तब वह तृतीय (वाणप्रस्थ) आश्रमका आश्रय लेंगे। गृही पुत्रका पुत्र देखकर पत्नीके रक्षणाविक्षणका भार उपयुक्त पुत्रको समर्पणकर या पत्नीको साथ लेकर वनवासी होंगे! तब वह वाणप्रस्थी चर्म्म-वास परिधानकर अपने नित्य होम-साधन अग्निकी रक्षा करेंगे। मुनिजनोचित वन्य फलमूलादि द्वारा ही उनकी जीवनयात्रा निर्व्वाह होगी। वह, नख, लोम, श्मश्रु प्रभृति कर्त्तन न करके

मस्तकपर विपुल जटाभार वहनकर सायं और प्रभातके समय स्नान करेंगी और शाक मूल फलादि द्वारा ही नित्य पञ्च-यज्ञानुष्ठायी हो, उसके द्वारा ही भिक्षुक या अतिथिगणका परितोष करेंगी। बाण-प्रस्थाश्रमी किसीसे भी कुछ ग्रहण न करेंगी, किसीको कोई वस्तु, सङ्कल्पकर दान भी न देंगी, वह नियत वेदान्त और वेदपाठतत्पर रहकर अपनी वैवाहिक अग्निसे नित्य यथा-विधि आहुति प्रदान करेंगी और निजा-याससे समाहृत फलमूलादि द्वारा हवनीय हविका प्रयोजन निर्व्वाहकर स्वयंकृत लवण और फलोद्भूत स्नेहद्रव्य ही भक्षण करेंगी। बाणप्रस्थाश्रमी सब तरहके मांसाहारसे विरत रह वर्षके आश्विनमासमें पूर्व्वाहृत शाकमूलफलादि भक्षणसे भी निवृत्त होंगी और ग्राम्य फल मूल और कर्षणजात अन्न परित्याग करेंगी। दन्तोलुखलिक या अश्मकुट्टोसे ही दिन यापन करेंगी। प्रात्य-हिक अन्न ही प्रतिदिन सञ्चय करेंगी, अथवा एक मासोपयोगी अन्न पहलेसे ही सञ्चित रखेंगी, या अपने साध्यानुसार भावी मास-वयका या छः मासका उपयोगी फल-मूलादि पहलेसे ही सञ्चित रखेंगी। वह रातमें आहार या एक दिवस अन्तर आहार, या तीन दिन अन्तर आहार, चान्द्रायणव्रत और पक्षके अन्तमें या महीनेके अन्तमें आहार करेंगी या वैखानसवृत्ति अवलम्बनकर केवल शाकमूलफलाशी हो तपश्चरणसे देहको शुष्ककर सदा पितृगण और देवताओंकी तृप्ति साधन करेंगी। नित्य होमीय अग्निको साथ ले किसी स्थान निर्द्दिष्टमें, वासस्थानकी तरह आश्रय न कर सर्व्वत्र विचरण करेंगी, प्राण धारणके लिये केवल बनवासी तपस्वियोंसे भिक्षा लेंगी या आहारके समय केवल ग्राममें जाकर अष्टग्रास मात्र अन्न भिक्षाकर भोजन करेंगी। इस तरह बनवासी निज आश्रम-धर्म्मका प्रतिपालन करनेसे ब्रह्मलोकमें भी पूजित होंगी। इसतरह जीवनका तृतीय भाग बनमें अतिवाहनकर चतुर्थभागके प्रारम्भमें ही सर्व्वविध सङ्ग परिहारपूर्व्वक प्रव्रज्या ग्रहण करेंगी। देवऋण, पितृ-ऋण और मनुष्यऋण परिशोध और पुत्रो-त्पादन न करके या यज्ञानुष्ठानमें निरत रहकर, जो व्यक्ति, प्रव्रज्या-आश्रयमें अभिलाष रखते हैं, वह निश्चय ही नरक-गामी होते हैं। जो व्यक्ति, अन्त्याश्रमी हो प्राणियोंके किसी तरहके भयका कारण न हो, यावत् जीव हो उसे अभय प्रदान करते हैं जानकर अन्त्याश्रमी आत्मध्यान लिप्सु हो अग्नि और गृह परित्यागकर अकेले असहाय अवस्थामें नियत विचरण करनेमें समर्थ होते हैं। वह केवल आहारार्थ ग्राममें प्रवेश करेंगी। कभी जीवन या मृत्यु कामना न करके, भृत्य जैसे प्रभुनिर्द्देशानुवर्त्ती होता है, उसी तरह, केवल कालकी प्रतीक्षा करेंगी। एक

मुक्तिके अभिलाषी होकर, विण्मूत्रमें सवधान रखकर, सर्व्वत्र ममताशून्य वृक्ष-मूलमें वास करेंगे। ध्यान, शौच, भिक्षा और निर्ज्जनवास, इन चतुर्व्विध कर्म्मके सिवा यतिके लिये और कोई पञ्चमकर्म्म नहीं है। उक्त अन्त्याश्रमी आषाढ़ादि मास-चतुष्टयमें कहीं न जावेंगे; कारण, उस समय गमनागमनसे वीजाङ्कुर और कितने ही जीवोंकी हिंसा होती है। यति, जन्तुओंके ऊपर बेपैर दिये चलेंगे, वस्त्रशोधित जल पान करेंगे, अनुद्वेगकर वाक्य कहेंगे और कभी किसीसे क्रुद्ध न होंगे; और किसीकी अपेक्षा न कर, निर्द्दिष्ट आवासविहीन, जितेन्द्रिय, ब्रह्मा-नुध्यानपर और आत्मपात्र सहाय हो, केश नखादि छेदन न करके, सदा अवस्थान करेंगे। भिक्षु, कुसुम्भरञ्जित वस्त्र परि-धान, दण्डधारण और भिक्षालब्ध अन्न भक्षणकर, यशोलाभवासना परिहारकर अलावु, दारु मृत्तिका या वेणुनिर्म्मित पात्र व्यवहार करेंगे; तैजस पात्र कभी न ग्रहण करेंगे। यति व्यक्ति यदि एक मात्र कपर्द्दक भी ग्रहण करते हैं, तो उन्हें प्रतिवार सहस्र गोवधका पाप होता है; यह श्रुतिमें कहा है। और यदि किसी कामिनीको कामुक हो हृदयमें धारण करते हैं, तो दो कोटि ब्रह्मकल्पकाल कुम्भीपाक नरक भोगते हैं, दिन रातमें यदि एकबार भी भिक्षार्थ विचरण करें, तब भी अधिक ग्रहण न करेंगे। जब गृहस्थका गृह, पाकधूमरहित मूषल-ध्वनिशून्य और पाकयोग्य अङ्गारविहीन हो और आहारके उपरान्त उच्छिष्ट शराव सब परित्याग होगा, यति नित्य उसी समय भिक्षा करेंगे। यतिके आहारसङ्कोच और निर्ज्जनवासकर जितेन्द्रिय और राग-द्वेषादिशून्य होनेपर, निर्व्वाणपद सहज ही लाभ होता है। जिनके घरमें यति क्षणकाल विश्राम करते हैं, उन्हें दूसरे पुण्यका कोई प्रयोजन ही नहीं, वह उसीसे कृतकृत्य होते हैं; यति जिनके घर एक रात वास करते हैं, उन गृहस्थोंका आजीवन सञ्चित पापपुञ्ज दग्ध होता है। कोई कोई आश्रमी क्यों न हों, सबको ही देहका वार्द्धक्य है, उत्कट रोगयन्तना मृत्यु, बारबार गर्भप्रवेश, गर्भमें दारुणाक्लेश, अनन्त योनिमें वास, प्रियजनके साथ वियोग, अप्रियजनसे मिलन, धर्म्मानुष्ठानमें दुःख, फिर नरकवास, नरकमें अशेषयातना भोग, अपने अपने कर्म्मदोषसे विविध असद्‌गति, देहका अस्थायित्व और एकमात्र ब्रह्मकी नित्यता इन सबकी पर्य्या-लोचनाकर मुक्तिके लिये यत्न करेंगे। जो सब यति भिक्षापात्र परित्यागकर, निज करतलको ही भिक्षाधार करते हैं, दिन दिन उनका शतगुण पुण्यसञ्चय होता है। साधु इस तरह क्रमिक चारो आश्रमको सेवाकर रागद्वेषादि और सङ्ग परिहारकर

ब्रह्मसायुज्यको प्राप्त होते हैं। बुद्धिहीन मनुष्यकी अवश आत्मा केवल संसारमायासे बद्ध होती है; किन्तु वही आत्मा बुद्धिमान द्वारा चालित हो सद्गति लाभ करती है। वेद, पुराण, स्मृति, उपनिषदिया, भाष्य, सूत्र, और द्रव्य जो कुछ वेदानुसारी वाङ्मयशास्त्र हैं—वह सभी विज्ञान और ब्रह्मचर्य्य, तपस्या, दम, श्रद्धा, उपवास और अनासक्ति, यह ब्रह्मज्ञानके प्रति कारण हैं। वह आत्मरूपी ब्रह्म सब आश्रमोंके ही जिज्ञास्य, श्रोतव्य, मन्तव्य और अति यत्नसे द्रष्टव्य हैं। आत्मज्ञानसे ही मुक्ति होती है, बिना योगके आत्मज्ञान नहीं होता, वह योग भी बहुत समयके अभ्याससे ही सिद्ध होता है। अरण्यवास या शास्त्राभ्यास, या दान, व्रत, यज्ञ, तपस्या, पद्मासन, नासाग्रदर्शन, आचार, मौनीभाव अथवा नियत मन्त्रजप करनेसे योग सिद्ध नहीं होता, किन्तु उस विषयमें अति आग्रह सहित बार बार विफल होकर भी एक मात्र अभ्यास करनेसे, वह सुसिद्ध होता है। जो आत्माको ही एकमात्र आश्रय जान, नियत उसमें ही क्रीड़ा करते हैं और उसीसे सन्तुष्ट रहते हैं; उनके लिये योगसिद्धि अति सुलभ है। इस संसारमें जिनके निकट आत्मा तर कुछ नहीं है, वही आत्मज्ञानी योगिवर ब्रह्मपद लाभ करते हैं। पण्डितगण द्वारा आत्मासे मनका संयोग ही योगके नामसे निर्दिष्ट है। कोई कोई प्राणके साथ अपानवायुके संयोगको योग कहते हैं और दूसरे व्यक्ति विषयमें इन्द्रिययोगको ही योग कहते हैं। वह विषयासक्तचित्त मूढ़गण कभी ज्ञान या मुक्तिलाभ नहीं कर सकते। जबतक मनोवृत्तिका निरोध नहीं होता, तबतक योग सम्बन्धी अलीक प्रवादकी भी सम्भावना नहीं है। जो मनकी सब वृत्तिको रोधकर, चित्तको परमात्मामें मिला देते हैं; वही योगी हैं और मुक्ति उनके हाथमें है। पहले सब इन्द्रियोंको अपनी अपनी वृत्तिसे रोककर, मनमें लीन करेंगे; उस मनको जीवात्मामें लीनकर, उस जीवका सब भाव दूर करते हुए उसे ब्रह्ममें विलीन करेंगे, इसीका नाम ध्यान और योग है। इसके सिवा जो कुछ है, सभी ग्रन्थका वाहुल्य परिचायक मात्र है। सभी ब्रह्मको हृदयङ्गम नहीं कर सकते, इसलिये ही वह अस्तित्ववादके विरोधी होते हैं; किन्तु वह समझ नहीं सकते। जैसे अविवाहिता कुमारी, पुरुषप्रसङ्गम जनित सुखको नहीं जान सकती और जन्मान्धके निकट वर्त्तिका प्रज्वलिता होनेसे भी वह जान नहीं सकता, अयोगी पुरुषके लिये ब्रह्म भी उसी तरह हैं। परमात्मा नित्य और अतिसूक्ष्म हैं जानकर सहज ही लक्ष्य नहीं किया जाता; वह योगाभ्यासरत पुरुषको ही अति सुलभ हैं। वातावृत सलिलकी तरह जीवका चित्त नियत

अस्थिर होनेसे सदा उसका अविश्वास करेंगे। अस्थिर चित्तके स्थिर करनेका उपाय ;—प्राणवायुका निरोध है। वायुनिरोधका उपाय,—आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि यह षड़ङ्ग योगका नियत अभ्यास है। संसारमें जितनी जीवयोनि हैं, उतनी तरहके आसन भी हैं। उनमें सिद्धासन और पद्मासन यह दोनो शीघ्र सिद्धि प्रदान करते हैं। मेढ़पीड़ा न देकर वाम उरुसे दक्षिण उरु विन्यासकर उपवेशन करनेको सिद्धासन कहते हैं ; वह योगमें सम्यक् सिद्धिदान करता और उसके अभ्याससे देह दृढ़ होती है। दक्षिणचरण वाम उरुसे या वामचरण दक्षिण उरुसे विन्यासकर उपवेशन करनेको पद्मासन कहते हैं। पद्मासनसे बैठकर पश्चाद्भागसे करद्वय द्वारा पदद्वयका अङ्गुष्ठ धारण करेंगे, इससे शरीर अति सुदृढ़ होता है। अथवा स्वस्तिकादि आसनोंमें जिस आसनसे बैठकर योगीको सुखानुभव हो, वह उसी आसनसे बैठकर योगाभ्यास करेंगे। जल और अग्निके पासमें, जीर्ण अरण्य या गोष्ठमें दंश या मशकाकीर्ण स्थानमें, ग्रामके प्रधान वृक्षमूलमें चत्वरमें या केश भस्म अङ्गार तुष या अस्थि प्रभृतिसे दूषित स्थानमें, या पूतिगन्धमय या बहुजनाकीर्ण स्थानमें योगाभ्यास न करेंगे। जहां किसी तरहके विघ्नकी सम्भावना नहीं है, परन्तु सब इन्द्रियोंको सुख बोध हो और मनको आनन्द हो, उसी धूपमाल्यादि गन्धसे आमोदित स्थानमें योगाभ्यास करेंगे, अत्यन्त आहारसे क्लिष्ट, क्षुधार्त्त मलमूत्रका वेगधारक, पथश्रान्त, अथवा चिन्तित न होकर ही योगाभ्यास किया जाता है। दोनो चरण उरुद्वयके ऊपर उत्तानभावसे रख, दक्षिण उरुके ऊपर वामकर रख, दक्षिण हाथ उन्नतकर और वक्षःस्थलमें मुख रख, दोनो आंख मूंदकर, दांतसे दांत स्पर्श न करके, जिह्वाको तालुमें स्थिर भावसे रख, संवृतवदन हो, सब इन्द्रियोंकी वृत्ति निरोधकर अनति निम्न या अनति उच्च आसनपर उपविष्ट हो, उत्तम, मध्यम और लघुभेदसे प्राणायाम करेंगे। वायु चञ्चल रहनेपर, सभी चञ्चल होता है और उसके स्थिर रहनेसे सभी इन्द्रिय स्थिर रहती हैं ; इसलिये योगी स्थिरता लाभ करनेकी वासनासे वायु-रोध करेंगे। जबतक देहमें प्राणवायु रहती है, तभीतक लोग जीवित रहते हैं और इस प्राणवायुके निर्गमनको मरण कहते हैं ; अतएव यत्नसे इसकी रक्षा करेंगे। जबतक शरीरमें प्राणवायु आवद्ध रहे, तबतक मन वाह्यवृत्तिशून्य हो स्थिर रहता है और जबतक भ्रूद्वयके बीच दृष्टि निविष्टा रहे ; तबतक जीव मृत्युभयसे निष्कृति पाता है। ब्रह्मा भी कालभयसे नियत प्राणायाम करते हैं। योगिगणने भी प्राणवायु रोधकर सिद्धि-

लाभ किया है। इस समय द्वादश मात्रा मन्त्रके जपको लघु और उसकी द्विगुण मात्रा मन्त्रजपको मध्यम और उसकी त्रिगुण मात्रा मन्त्रजपको उत्तम प्राणायाम कहते हैं। प्राणायाम अनुष्ठान करनेपर क्रमशः स्वेद, कम्प और विषाद उत्पन्न होता है। लघु प्राणायामसे स्वेद, मध्यमसे कम्प और उत्तमसे विषाद होता है; किन्तु नियत अभ्यास करते रहनेसे, यह सब भी अन्तर्हित होता है। इस तरह योगी क्रमशः प्राण निरोधकर सिद्धिलाभ करते हैं और इसके अभ्याससे योगी जहां जानेकी इच्छा करें, वहां वायुसे जा सकते हैं। प्राणवायुका हठात् रोध करनेसे वह रोमकूपसे निकलकर, देहको विदीर्ण करती और कुष्ठादि रोगका कारण होती है; अतएव वनैले हाथीकी तरह इसे क्रमशः रोध करेंगे। जैसे वनैले गज या सिंह शासकके शासनमें रहकर क्रमशः मृदु होते हैं, फिर उनको किसी आज्ञाका लङ्घन नहीं करते; उसी तरह योगीकी हृदयस्थित प्राणवायु भी क्रमशः योगाभ्याससे निरुद्ध हो आज्ञावह होती है। यह वायु दक्षिण और वाममार्गसे नासारन्ध्रसे षट्त्रिंशदङ्गुल पर्य्यन्त बाहर प्रयाण करती है इसलिये इसका नाम "प्राण" है। जिस समय सब नाड़ीचक्र अनाकुलभावसे विशुद्धि लाभ करते हैं, तभी योगी प्राणायाम करनेमें समर्थ होते हैं। पहले आसनसिद्ध होंगे, फिर चन्द्रनाड़ी (इड़ा) द्वारा वायुपूरण करेंगे, फिर सूर्य्यनाड़ी (पिङ्गला) द्वारा रेचन करनेसे प्राणायाम होता है। योगी चन्द्रबीजसंयुक्त गलित सुधाराशिकी चिन्ता करते हुए प्राणायाम द्वारा तत्क्षणात् ही विमल सुख अनुभव करेंगे। सूर्य्यनाड़ीसे उस वायुको आकृष्ट करते हुए उससे जठरगुहा परिपूर्णकर क्रमशः कुम्भकानुष्ठानसे चन्द्रनाड़ी द्वारा रेचन करेंगे। ज्वलितवह्निराशिकी तरह हृदयमें सूर्य्यकी चिन्ता करते हुए दक्षिण प्राणायाम द्वारा सुख लाभ करते हैं। इस तरह तीन महीने प्राणायाम अभ्यस्त होनेपर, योगीका सब नाड़ीचक्र विशुद्ध होता है। उससे वह प्राणसिद्ध होते हैं। सिद्धप्राण होनेपर इच्छानुसार प्राण धारण कर सकते हैं और उनका जठरानल प्रदीप्त और नादध्वनिका अभिव्यक्ति होता है और कभी कोई रोग उनका आश्रय नहीं कर सकता। देहस्थ वायुको प्राण कहते हैं और तद्घटित श्वासमयी मात्रा प्राणायामरूप कहा जाता है। अधम प्राणायामसे शरीर घर्म्माक्त और मध्यम प्राणायामसे शरीर कम्पमान होता है। बद्धपद्मासन हो उत्तम प्राणायामका अभ्यास करनेसे, देह भूमिसे ऊर्द्धमें उत्थित होती है; प्राणायाम करनेसे शारीरिक दोषसमूह और प्रत्याहार करनेसे सञ्चित पापराशि विलुप्त होती है; धारणाबलसे मन धैर्य्य

धारणा करता है; ध्यानबलसे ईश्वर साक्षात्कार होता है; समाधिबलसे शुभाशुभ कर्म्मके क्षयसे मुक्तिलाभ होता है और आसनबलसे शरीर दृढ़ होता है। यह छः योगके अङ्ग हैं। द्वादश प्राणायाममें एक प्रत्याहार होता है, द्वादश प्रत्याहारसे एक धारणा होती है, द्वादश धारणासे एकबार ध्यान होता है; इसीसे ईश्वर साक्षात्कार लाभ होता है। द्वादश ध्यानसे एकबार समाधि होती है, समाधिके उपरान्त अनन्त स्वप्रकाश ज्योतिः परिलक्षित होती है; जो उसे देख पाते हैं, उन्हें किसी तरहकी अधिकारिता नहीं रहती और फिर संसारमें गमनागमन नहीं करना पड़ता। जिस समय प्राणवायु आकाशमें अवस्थित होती है तब घण्टा प्रभृति बाजेकी मधुरध्वनि सुनी जाती है और इसके उपरान्त सिद्धि मिलती है। योगीके प्राणायाम अनुष्ठानसे सब व्याधि दूर होती है और यह प्राणायाम अयोगी पुरुष द्वारा बलपूर्व्वक अभ्यस्त होनेसे हिक्का, श्वास, कास, और मस्तकसे, नेत्र और कानसे वेदना प्रभृति नानाविध पीड़ा उत्पादन करती है, अतएव परिमितरूपसे वायु-त्याग, उसी तरह वायुका पूरण और उसी तरह वायुको आवद्ध करनेमें सक्षम होनेपर योगी शीघ्र सिद्धिलाभ कर सकते हैं। वाह्य विषयमें यदृच्छासे विचरणशील इन्द्रियगणको योग द्वारा उससे प्रत्याहरणको प्रत्याहार कहते हैं। जैसे कच्छप अपना सब अङ्ग प्रत्याहृत करता है, उसी तरह जो व्यक्ति प्रत्याहार विधानसे इन्द्रियसमूहको प्रत्याहरण करते हैं; वह निष्पाप होते हैं। चन्द्र तालुदेशमें रहकर अधोमुखसे अमृत वर्षण करते हैं और सूर्य्य नाभिदेशमें रहकर ऊर्द्धमुखसे वह अमृत ग्रास करते हैं। ऐसा काम करेंगे, जिससे ऊर्द्धमें नाभि और अधोदेशमें तालु रहे ऐसा करनेसे सूर्य्यको ऊर्द्धमें और चन्द्र अधोदेशमें रखा जा सकता है। यह विपरीताख्य कार्य्य अभ्याससाहाय्यसे ही सिद्ध होता है। प्राणायाम विधानज्ञ योगी काकचञ्चुनिभ निजमुख द्वारा अत्यन्त शीतल प्राणधारक वायु पानकर देवत्वलाभ करते हैं। तालुके बीच जिह्वा रखकर ऊर्द्धमुखसे अमृत पान करनेपर, छः महीनेमें ही देवता होते हैं, इसमें सन्देह नहीं। जो योगि ऊर्द्धजिह्व होकर स्थिर भावसे अमृत पान करते हैं, वह पक्षके भीतर ही मृत्युको जय करते हैं और जिह्वाके अगले भाग द्वारा मूलभागस्थ छिद्र स्पर्शकर सुधामयी देवीका ध्यान करनेसे छः महीनेमें कवि होते हैं। जिन योगीकी देह अमृतसे परिपूर्ण है, वह दो तीन वर्षमें ही ऊर्द्धरेता और अणिमादि सिद्धसम्पन्न होते हैं। योगी आसनसिद्ध, प्राणायामानुष्ठायी और प्रत्याहारसम्पन्न हो धारणाका अभ्यास करेंगे। मनको